In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

900.

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला
१८

पञ्चविध

कषाय-कल्पना विज्ञान

डा० अवधबिहारी अग्निहोत्री ए. एम. एस.

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS
अ०भा०
आयुर्वेद
महासम्मेलन
पुस्तकालय
दिल्ली
DELHI

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला
१८

All India Ayurvedic Congress.
"Dhanwantari Bhavan,"
Road 66, Punjabi Bagh; New Delhi-1100..
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

पञ्चविध

कषाय-कल्पना विज्ञान

लेखकः–
पं० अवधबिहारी अग्निहोत्री ए. एम. एस.

भूमिका-लेखकः–
राष्ट्रपति–चिकित्सक
पं० श्रीधर शर्मा ए. एम. एस.

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–१

संवत् २०१४] मूल्य १॥) [ई० १९५७

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्या भवन,

चौक, वाराणसी-१

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No. LX3
Book No. 152N57
Acc. No. 000136

(सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः)

Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1957

मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस,
वाराणसी-१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

समर्पण

मेरी यह 'पञ्चविध कषाय' विषय-विवेचनी

पुस्तिका

परम पूज्य, प्रातःस्मरणीय

गुरुदेव

धन्वन्तरिकल्प; आयुर्वेद-बृहस्पति

आचार्यप्रवर पं० राजेश्वरदत्तजी शास्त्री

प्रोफेसर आफ आयुर्वेद, हेड आफ दि डिपार्टमेण्ट

आफ आयुर्वेद तथा डायरेक्टर आफ

आयुर्वेदिक रिसर्च, आयुर्वेदिक कालेज (का. हि. वि. वि.)

को

सादर, सस्निग्ध हृदय से समर्पित !

जिनकी असीम अनुकम्पा तथा आशीर्वाद के

फलस्वरूप ही

आज मैं इस रूप में आयुर्वेद-जगत् तथा साहित्य

की

सेवा करने योग्य

हो सका

हूँ।

धन्वन्तरि-त्रयोदशी

अवध अग्निहोत्री

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भूमिका

राष्ट्रपति-चिकित्सक

पं० श्रीधर शर्मा, ए० एम० एस०

कविराज पं० अवधबिहारी जी अग्निहोत्री आयुर्वेदाचार्य ए० एम० एस० के 'पंचविध कषाय-कल्पना' की भूमिका लिखते समय मैं हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। इसके पूर्व भी ये 'व्रणशोथ-विमर्श' नामक पुस्तक वैद्यसमाज के सम्मुख रख चुके हैं।

पंचविध कषाय-कल्पना भारतीय आयुर्वेद की एक महत्त्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक देन है। इसके अन्तर्गत रोगी के उपचार के साथ ही उसको दिये जाने वाले पथ्यापथ्य की भी मीमांसा की गई है। वस्तुतः रोग के उपचार में पथ्य का विशेष महत्त्व है। साथ ही औषध के अनुपानादि, पत्रादि के स्वरस, मधु आदि का भी चिकित्सा में बड़ा महत्त्व है। वस्तुतः अनुपानादि के कारण ही औषध अपना प्रभाव प्रदर्शित करने में शक्तिमती होती है। किस औषध के साथ किस मात्रा में किन वस्तुओं का अनुपान दिया जाय, इसका समुचित ज्ञान चिकित्सक के लिए तो अत्यावश्यक है ही, साधारण जनता के लिए भी इसका ज्ञान जीवननिर्वाह में लाभदायक होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री अग्निहोत्री जी ने पंचकषाय—स्वरस (पत्रादि को कूटकर निकाला हुआ रस), कल्क (चूर्ण, लुग्दी, चटनी आदि), क्वाथ (काढ़ा), फाण्ट (चाय की तरह गरम उबलते पानी में औषधद्रव्य को डालकर प्राप्त किया सार भाग) तथा हिम कषाय (शीतल जल में औषधद्रव्य को रात भर रखकर औषध-गुणयुक्त जल)—का सुन्दर विवेचन किया गया है। इस मीमांसा में लेखक ने आयुर्वेद के साथ-साथ यूनानी तथा पाश्चात्य मतों का भी तुलनात्मक समन्वय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपस्थित किया है तथा स्थान-स्थान पर तण्डुलोदक, उष्णोदक, षडंगपानीय, भैषज्य-सिद्धजल-कल्पना, लाक्षारस-कल्पना, मांसरस, क्षीरपाक, प्रमथ्या, यूष, यवागू आदि का विवेचन कर रोगी के पथ्य का निर्देशन करने का प्रयास किया है।

यह पुस्तक तुलनात्मक दृष्टि से तथा समन्वयात्मक दृष्टि से भी अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक सहायक सिद्ध होगी, क्योंकि लेखक ने यहाँ समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। साथ में आयुर्वेद-परीक्षाओं के शिक्षार्थियों के अध्ययन-क्रम को भी लेखक ने ध्यान में रखा है। इस प्रकार यह पुस्तक उनके एतत्सम्बद्ध अध्ययन-क्रम को समेट लेती है। साथ ही ग्रामीण चिकित्सालयों में कार्य करने वाले उन वैद्यों के लिए भी यह अत्यधिक उपयोगी है जो प्रायः पाश्चात्य ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं।

श्री अग्निहोत्री जी का यह कार्य प्रशंसनीय है तथा वे बधाई के पात्र हैं। मेरी ईश्वर से मंगल कामना है कि अग्निहोत्री जी इसी प्रकार भविष्य में भी आयुर्वेद-समाज की सेवा करते रहें।

धन्वन्तरि-त्रयोदशी,
सं० २०१४

श्रीधर शर्मा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वक्तव्य

हमारा जीवन एक संग्राम है। सफलता, उन्नति, सुख, समृद्धि आदि को निरंतर प्राप्त करते रहने के लिये हमें इस संसाररूपी रणक्षेत्र में सतत संघर्ष करना पड़ता है और फलतः हमारे शरीर में नित्यप्रति कुछ न कुछ टूट-फूट होती रहती है। इसी टूट-फूट को दूसरे शब्दों में रोग कहते हैं और इसकी मरम्मत या सुधार के प्रयत्न को चिकित्सा।

संघर्ष और टूट-फूट के अनिवार्य होने के कारण हमें रोग और चिकित्सा शब्दों पर व्यापक विचार करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। ऐसे प्रत्येक विचारक के लिये आवश्यक है कि वह अपने देश-काल-परिस्थिति के अनुसार ही ही उस टूट फूट की मरम्मत या चिकित्सा की ओर प्रयत्नशील हो। यही वह दृष्टिकोण है जिसके अनुसार विभिन्न देशों में विभिन्न वर्गों व जातियों में विभिन्न प्रकार की चिकित्सा-प्रणालियाँ जन्म लेती हैं और आवश्यकता, रुचि तथा वातावरण के अनुसार अपना-अपना क्षेत्र निर्धारित कर लेती हैं।

मैं भारतीय हूँ और मेरे पाठक भी अधिकांश भारतीय हैं, अतः भारतीय चिकित्सा-प्रणाली, आयु तथा जीवनदाता इस सनातन चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेद के महत्त्व पर मुग्ध होकर उसकी सेवा के उद्देश्य से उसके एक प्रमुख अंग पर विचार करने, एवं उसकी विशेषताएँ, उपयोगिताएँ, गौरव तथा रहस्यमय अंशों को जनसाधारण के लाभार्थ प्रकाश में लाने के उद्देश्य से यह लघुकाय पुस्तक प्रस्तुत करने को सन्नद्ध हुआ हूँ।

आयुर्वेद का विकास जिस युग में हो रहा था उस समय भारत धार्मिक जीवन को अधिक महत्त्व देता था। यही कारण है कि इस शास्त्र में समाज के हित के हेतु प्रयुक्त समस्त स्वास्थ्यसंबंधी नियम धर्मपालन के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं। व्रत व्यवस्था का धार्मिक, स्वास्थ्यदायक एवं अन्तःकरणशोधक रूप हम सब भली भाँति जानते हैं। इसी प्रकार कषाय-चिकित्सा से संबंधित व्यवस्था भी हमें दृष्टिगोचर होती है, जैसे चातुर्मास्य में अशोक, आमलकी, तुलसी, बेल, पारिजातक, गूलर तथा अपामार्ग का प्रयोग। इससे सिद्ध होता है कि कषाय-चिकित्सा हमारे यहाँ की बहुत प्राचीन चिकित्सा-पद्धति है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

'कषाय' शब्द की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में भली प्रकार की जा सकती है—'**के शरीरे स्यति यन्त्रणामिति कषायः।**' तथा इस कषाय शब्द का निर्माण भी तीन अक्षरों के योग (क + षा + य) से हुआ है। इनमें से 'क' का अर्थ है काय या शरीर। 'षोऽन्तकर्मणि' से 'षा' का निर्माण हुआ है जिसका अर्थ होता है नाश करना तथा 'य' अक्षर यम अथवा यन्त्रणा का द्योतक है। इस प्रकार इन तीनों अक्षरों के योग से बनने वाले शब्द का अर्थ होता है शरीर के समस्त दोषों का नाशक द्रव्य। अस्तु कषाय का प्रयोग चिकित्साधिकार में किया जाय तो किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। अर्थात् जो पदार्थ जीवन में संघर्षजन्य शारीरिक टूट-फूट (रोग या दोषों) को मरम्मत करके (चिकित्सा के कार्य से) ठीक करे उसे 'कषाय' संज्ञा देना उचित ही प्रतीत होता है।

पंडितराज जगन्नाथ ने स्वनिर्मित 'गंगालहरी' में गंगाजल के लिये 'कषाय' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि गंगाजल भी अनेक ओषधियों के स्पर्श से ओषधि-गुणों से युक्त होकर आता है।

आत्मा के हित के लिये तन एवं मन दोनों का स्वस्थ और संतुष्ट रहना आवश्यक है। इसीलिये आयुर्वेद में कायिक व मानसिक चिकित्सा का तन व मन के अनुकूल होना आवश्यक माना गया है। रुचिविरुद्ध श्रेष्ठ वस्तु के सेवन से भी अरुचिमूलक वमन हो सकता है तथा रुचिपूर्वक प्रतिकूल वस्तु के सेवन से भी वमन नहीं होता। इसलिये चिकित्सा का स्वाभाविक होने के साथ तन एवं मन के अनुकूल होना आवश्यक है। एक तो हम शाकाहारी हैं; दूसरे कषायों में प्रयुक्त होनेवाली वनस्पतियाँ हमारे यहाँ सर्वत्र सुलभ हैं। घर-घर में लोग आयुर्वेद के ज्ञाता न होते हुए भी काढ़ा-चूर्ण आदि का प्रयोग करते देखे जाते हैं, अतः प्रतीत होता है कषाय-चिकित्सा हमारी अपनी वस्तु है और यही हमारे जीवन के लिये पूर्णतः अनुकूल भी है।

आयुर्वेद में वर्णित कषाय के पाँच भेद—स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम तथा फाण्ट आज भी चिकित्सा-क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कषाय के इन भेदों की व्याख्या, निर्माणविधि, गुण-कर्म-प्रयोग तथा किस द्रव्य के लिये कौन सा भेद प्रयोग में लाया जाय, उसके साधारण नियम, उनकी युक्ति तथा भिन्न-भिन्न विधियों की विशेषताओं की विवेचना प्रस्तुत पुस्तक में पूर्णरूपेण की गई है। चिकित्सा की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

दृष्टि से इन सबके भेद के निरूपण के विषय में यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि कषाय के पाँच भेद उत्तरोत्तर लघु गुणों वाले हैं। इसी कारण वर्णन करते समय भी कह दिया गया है कि इनका प्रयोग करते समय रोग तथा रोगी के बलाबल का विवेचन कर लेना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि इससे रोगी उस औषध को सरलता से पचाने में समर्थ हो सकेगा जिसके फलस्वरूप उसके रोग का दमन भी स्वाभाविक रूप में हो सकेगा।

भारत एक निर्धन देश है। पाश्चात्य प्रणाली 'एलोपेथी' के वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत औषधियाँ प्रायः बहुमूल्य होती हैं जो कि हमारे देश की बहुसंख्यक जनता के लिए अप्राप्य सी होती हैं। इसके विपरीत आयुर्वेदीय चिकित्सा भारतीय होने के साथ सर्वसुलभ तथा सर्वजनसाध्य भी है। इसी कारण हमारी कषाय-चिकित्सा सुगम और हमारी सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक वृत्ति के अनुकूल भी है। हम कम से कम दो सहस्र वर्षों से इस चिकित्सा से परिचित हैं और अधिकांश भारतवासियों के शाकाहारी होने के कारण भी यह चिकित्सा अत्यन्त प्रिय मानी जाती है। जीवनसत्त्व अथवा खाद्यसामग्री के प्राणदायक तत्त्वों की दृष्टि से भी विचार करने पर प्रतीत होता है कि कषाय हमें द्रव्य के अधिकांश खाद्य प्राण देने में समर्थ है और जल में घुलनशील समस्त जीवतिक्तियाँ (विटामिन्स) आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। कठिन द्रव्यों के उबालने तथा मृदु द्रव्यों के लिए स्वरस, कल्क तथा हिम-फाण्टादि के प्रयोगों का विवेचन भली प्रकार समझ चुकने के उपरान्त चिकित्सा-क्षेत्र में रोगनाशन-कार्य करने में वैद्य को असाधारण सफलता प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त कषाय वयःस्थापन, हृद्य, कण्ठ्य, बल्य, दीपन, स्तन्य आदि गुणों को प्राप्त करने में अत्यन्त सहायक होते हैं। कषायों का औषधिरूप में नहीं, पथ्यरूप में भी प्रयोग होता है, यथा—चावल का मण्ड के रूप में, मूँग की दाल का यूष के रूप में तथा धात्री (आमलकी) कल्क का चटनी के रूप में। इसके अतिरिक्त कषाय-चिकित्सा की अत्यन्त महत्त्व की व्यवस्था यह है कि दोषों की दृष्टि से इसका प्रयोग बड़ी सुगमता से किया जा सकता है जैसा कि सुश्रुत, भावमिश्रादि आचार्यों ने बताया है। मधुराम्ललवण कषाय अथवा कषायों का वातघ्न, मधुरतिक्त कषाय अथवा कषायों का पित्तघ्न तथा कटुतिक्त कषाय अथवा कषायों का श्लेष्मघ्न पदार्थों या औषध

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

द्रव्यों के रूप में प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस प्रकार उपर्युक्त कषायचिकित्सा की विशेषताओं की ओर थोड़ा सा भी ध्यान देने से कोई भी वैद्य कषायचिकित्सा की ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रह सकता।

कषायचिकित्सा द्वारा सफलता प्राप्त करने के हेतु कुछ और बातों पर भी ध्यान देना होगा, यथा—विशेष ऋतु में प्रकृति से हमको विशेष प्रकार की ओषधि प्राप्त होती है इसलिये ऋतुविशेष में विशिष्ट ओषधि के प्रयोग, उपयोग आदि की व्यवस्था कषायचिकित्सा के हेतु जान लेनी चाहिये। साथ ही दोषों की दृष्टि से आयु, काल, रस तथा त्रिदोष का विचार ऋतु, काल, रोग तथा रोगी के लिये करके कषायचिकित्सा का आयोजन करना चाहिये। उदाहरणतः शीतऋतु में पित्त प्रकुपित होने की अवस्था में एवं युवावस्था में पित्तप्राबल्य के कारण स्वरस का ही प्रयोग करवाना श्रेयस्कर होता है। इसी प्रकार यदि काल की सूक्ष्मता से भी इस पर विचार करें तो श्वासरोगी को दोपहर के बाद भारी (गुरु) द्रव्य न देने के सिद्धान्त का पूर्णरूप से अध्ययन करने पर उसका औचित्य तथा अनौचित्य भी समझ में आ जाता है। फिर रोग और रोगी को त्रिदोष की कसौटी पर कसने के पश्चात् कषाय का चयन करना चाहिये। जैसे पित्तप्रकृति के रोगी के लिए पित्तनाशक कषाय की योजना लाभदायक सिद्ध होगी। तदुपरान्त सात्म्य-असात्म्य-दृष्टि की भी अतीव आवश्यकता होती है। किसी व्यक्ति को उपर्युक्त औषध देने के बाद भी उसका पाचन न हो सकने की अथवा विरुद्ध गुणों का उत्कर्ष होने की अवस्था उत्पन्न होने पर उस हितकारी औषध का सेवन श्रेयस्कर नहीं माना जायगा। उदाहरणतः चिरायता पित्तनाशक होने पर भी कई मनुष्यों की प्रकृति के विरुद्ध होने के कारण वामक सिद्ध होता है। ऐसी दशा में अन्य पित्तनाशक औषधि का प्रयोग करना ही उचित होगा। इसी प्रकार देश, काल, प्रकृति, संयोग, करण, राशि आदि का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। बालकों, स्त्रियों तथा सुकुमार प्रकृति के रोगियों व वृद्धों में प्रयोग कराने के लिये अंशांशकल्पना साध्य होने के कारण कषायों का प्रयोग अच्छा रहता है। इस अच्छाई का कारण होता है इसका पचने में हल्का होने वाला गुण। इतना ही नहीं, कषाय अथवा कषायों का प्रयोग वृद्धि,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पाचन, विसर्ग आदि की अवस्था में भी सरलतापूर्वक तथा सफलता के साथ किया जा सकता है।

इन्हीं सब बातों पर पूर्ण ध्यान रखते हुये मैंने पञ्चविध कषायविषयक सभी प्रकार की सूचनाएँ पाठकों को देने का पूर्ण प्रयास प्रस्तुत पुस्तक में किया है। उद्देश्य यह भी रहा है कि विभिन्न राज्यों में प्रचलित मिश्रित प्रणाली के आयुर्वेदिक कालेजों के द्वितीय अथवा तृतीय वर्ष के छात्रों के हेतु निश्चित पाठ्यक्रम में वर्णित तथा भैषज्यकल्पना एवं रसशास्त्र के क्रियात्मक पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अंशों का विशद रूप से विवेचन हो जिससे उन आयुर्वेदिक कालेज के छात्रों को अपने क्रियात्मक ज्ञान को प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो तथा उनको इस विषय के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान प्राप्त हो सके। प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक कल्पना अथवा परिभाषिक शब्द एवं द्रव्य के लिए लेटिन, अँग्रेजी के साथ-साथ आयुर्वेद, यूनानी तथा अन्य पर्याय शब्द ग्रहण किये गये हैं तथा स्थान-स्थान पर आयुर्वेद-यूनानी-एलोपैथी से तुलना भी की गई है। पुस्तक की रचना इस उद्देश्य से की गई है कि आयुर्वेदिक, यूनानी तथा मेडिकल कालेजों में हिन्दी माध्यम से पढ़ाए जानेवाले पाठ्यक्रम में समन्वयात्मक प्रणाली पर प्रस्तुत की गई भैषज्यकल्पना के अंश का तात्पर्य सिद्ध हो सके।

इस प्रयास में मेरी जो कुछ भी सफलता हुई है उसका सर्वाधिक श्रेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद के प्रोफेसर आचार्यप्रवर पं० राजेश्वरदत्त शास्त्रीजी को है जिन्होंने अपने आदेशों व आशीर्वाद से इस कार्यक्षेत्र में लेखनी चलाकर कार्य करने की योग्यता प्रदान की है। मैं हृदय से श्रद्धेय गुरुवर डॉ० शिवनाथजी खन्ना, रीडर पैथालोजी आयुर्वेदिक कालेज (का० हि० वि० वि०) का भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपनी लगन तथा अध्यवसाय से मेरे हृदय में भी एक ऐसी प्रेरणा जागृत कर दी जो कि पृष्ठों पर लिखी जाकर आज पाठकों के हाथ में है। आचार्यप्रवर तथा अग्रजतुल्य पं० गङ्गासहाय पाण्डेय जी ए० एम० एस० तथा प्राध्यापक आयुर्वेदिक कालेज (का० हि० वि० वि)का आभार भी मैं हृदय की असीम गहराई से प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे सुझाव देने के साथ समय-समय पर आवश्यक सहायता तथा परामर्श देकर मुझे इस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

इस पुस्तक के सृजन में मुझे जिन-जिन ऋषिकल्प आचार्यों का आश्रय लेना पड़ा है उनमें से सभी का नामोल्लेख मैंने वर्णन-प्रसङ्ग में ही कर किया है। फिर भी प्रधानतः सङ्कलन का कार्य होने कारण उनके मतों और वर्णनों का सहारा लेने के हेतु मैं हृदय से उनका कृतज्ञ तथा चिरऋणी हूँ और वास्तव में इस अनुग्रह में मैं अपूर्व सन्तोष का अनुभव करता हूँ। फिर भी उन ऋषि-कल्प आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों के भाव ग्रहण करने में मेरी असमर्थता के कारण यदि उन वर्णनों में कहीं कुछ भाव या अर्थवैकल्य आ गया हो तो उसके प्रति भी मैं अपने को अपराधी मानता हुआ उन अमर, यशस्वी आचार्यों से क्षमा की याचना करता हूँ। वास्तव में देखा जाय तो मैं उन शब्दों का संकलन करने में ही अपने को इतना असमर्थ पाता हूँ कि मैं इन तथा उपर्युक्त ऋषिकल्प आचार्यों तथा गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता-यापन कर सकूँ।

फिर भी यदि मेरी यह पुस्तिका विद्वानों के विद्या-बुभुक्षित मस्तिष्क को कुछ भी सन्तोष प्रदान करने में समर्थ सिद्ध हो सकी तो मैं अपने प्रयत्न को निःसन्देह सफल मानूँगा।

अन्त में इस पुस्तक के हेतु चौखम्बा संस्कृत सीरिज एवं चौखम्बा विद्याभवन के सञ्चालकों का भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने कृपाकर शीघ्रातिशीघ्र इस पुस्तक को सुन्दर रूप में छाप कर मेरी साहित्य-सेवा की भावना को प्रोत्साहन दिया है। यह सम्भव है कि पुस्तक में कई प्रकार की ऐसी त्रुटियाँ ज्ञान-अज्ञान से रह गई हों जिनका ज्ञान स्वयं लेखक को भी नहीं है। अतः उन त्रुटियों के प्रति क्षमायाचना करता हुआ पाठकों से आयुर्वेद-जगत् तथा साहित्य की सेवा करने के हेतु सहयोग प्राप्त करने का निवेदन और आशा करता हूँ कि उनका सहयोग मुझे आयुर्वेद की सेवा करने के लिये सदैव प्रोत्साहित करता रहेगा।

काशी
धन्वन्तरित्रयोदशी
सं० २०१४ वि०

विनीत
अवध अग्निहोत्री

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

॥ श्रीः ॥

पञ्चविध
कषाय-कल्पना विज्ञान

विषय-प्रवेशाध्याय

पञ्चविध कषाययोनि—चरककार ने कषायकल्पना के आश्रय या योनियाँ पांच प्रकार की मानी हैं यथा 'पञ्चकषाययोनयः इति मधुर-कषायः, अम्लकषाय, कटुकषायः, तिक्तकषायः, कषायकषायश्च इति तन्त्रे संज्ञा' (च० सू० अ० ४) अर्थात् लवण रस को छोड़कर मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त और कषाय रसवाले द्रव्यों की स्वरस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट आदि पाँच प्रकार की कषायकल्पना की योनियाँ हैं। इनको चरकसंहिता में मधुरकषाय, अम्लकषाय, कटुकषाय, तिक्तकषाय और कषाय-कषाय नाम से जाना जाता है। लवणकषाय नामक संज्ञा का पाठ या उल्लेख इसलिये नहीं किया गया क्योंकि प्रथमतः लवण से स्वरस निकल नहीं सकता क्योंकि वह आर्द्र नहीं होता, दूसरी बात लवण से कल्क भी नहीं बनाया जा सकता जिसका कारण यह है कि वह सदैव शुष्क रहता है और पानी मिलाकर पीसने से अथवा कल्क बनाने का प्रयत्न करने पर वह पानी में घुल जाता है। इसी प्रकार लवण की शृत, शीत और फाण्ट इत्यादि कल्पनाएँ भी नहीं की जा सकतीं किन्तु लवण का चूर्ण बनाया जा सकता है किन्तु चूर्ण-रूप की कल्पना शास्त्रसंमत सिद्ध नहीं होती क्योंकि शास्त्र में कषायकल्पना औषध में गुणाधान करने के लिए की जाती है किन्तु लवण का चूर्ण कर लेने पर भी उसके गुणों में तनिक भी अन्तर नहीं आता अतः इस चूर्णकल्पना को मानना और न मानना दोनों ही बराबर है। इस प्रकार संक्षेप में यह

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कहा जा सकता है कि लवण की पाँचों कल्पनाएँ न हो सकने के कारण उसे लवण 'कषाय' नामक संज्ञा नहीं दी जाती।

क्या लवण भी कषाय कहा जा सकता है ?—अष्टाङ्गहृदयकार भी चरककार की उपर्युक्त बात का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि 'कषाय-योनयः पञ्च रसा लवणवर्जिताः।' (अ० हृ० क० अ० ६) कषायों की पांच योनियाँ लवणरस को त्याग कर अन्य रसों में हैं, इत्यादि।

पञ्चविध कषायकल्पना—पञ्चविध कषायकल्पना के विषय में 'परिभाषा-प्रदीप' में इस प्रकार का मत मिलता है 'स्वो रसः स्वरसः प्रोक्तः कल्को दृषदि पेषितः। क्वथितस्तु शृतः शीतः शर्वरीमुषितो मतः ॥ क्षिप्तोष्णतोये मृदितः फाण्ट इत्यभिधीयते। पञ्चैताश्च समुद्दिष्टाः कषायाणां प्रकल्पनाः। गुरवः स्युर्यथा पूर्वं लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥' (वै० प० प्र० द्वि० ख० १–२) अर्थात् वस्तु का जो निजी रस है, वह स्वरस है, सिल पर पीसने से कल्क या लुगदी होती है, जल में औटाने से वह जल उसका क्वाथ बनता है, जल के साथ रातभर भिंगो कर रखने से वह जल शीत बनता है तथा गरम जल में डाल कर मथने से वह जल फाण्ट बन जाता है। ये पांच तरह की कषाय-निर्माण करने की विधियाँ हैं। प्रथमतः पहले दूसरे से भारी (अर्थात् स्वरस कल्क से भारी होता है, कल्क क्वाथ से भारी होता है इत्यादि) तथा दूसरे-दूसरे पहले की कल्पना से हल्के (लघु) होते हैं (अर्थात् स्वरस से कल्क, कल्क से क्वाथ, क्वाथ से शीत तथा शीत से फाण्ट हलके होते हैं इत्यादि)।

चरकसंहिता में पांच प्रकार की कषायकल्पना आचार्य ने मानी है। यथा—'पञ्चविधं कषायकल्पनमिति तद्यथा—स्वरसः, कल्कः, शृतः, शीतः, फाण्टश्च कषाय इति। तेषां यथापूर्वं बलाधिक्यम्, अतः कषायकल्पना व्याध्यातुरबलापेक्षिणी; न त्वेवं सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनि भवन्ति ॥' (च० सू० अ० ४) अर्थात् स्वरस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट ये पांच प्रकार की कषायकल्पनायें हैं। उनको स्वरसकषाय, कल्ककषाय, शृतकषाय, शीतकषाय और फाण्टकषाय कहते हैं। उनमें से फाण्ट से शीत, शीत से शृत, शृत से कल्क और कल्क से स्वरस गुरु और अधिक बलवाला है। इसके विपरीत स्वरस से कल्क, कल्क से शृत, शृत से शीत और शीत से फाण्ट लघु और अल्प

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बलवाला है। अतः व्याधि और रोग का बल तथा द्रव्य का विचार करके पांचों में से किसी एक कषाय की कल्पना करनी चाहिये। इस प्रकार के कषाय सब प्रकार के रोग तथा रोगियों के लिए समान रूप से उपयोगी नहीं होते।

इसी प्रकार शार्ङ्गधरसंहिताकार भी पञ्चविधकषाय के विषय में अपना मत बतलाते हैं 'अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ। ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम्॥' (शार्ङ्ग० सं० म० ख० अ० १) स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट इन पांचों की कषाय संज्ञा है। ये उत्तरोत्तर लघु होते हैं यथा स्वरस की अपेक्षा कल्क, कल्क की अपेक्षा क्वाथ, क्वाथ की अपेक्षा हिम और हिम की अपेक्षा फाण्ट लघु (हलका) होता है।

पञ्चविध कषायकल्पनाओं की प्रमुखता तथा महत्त्व—इस प्रकार उपर्युक्त मतों का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है इन पञ्चविध कल्पनाओं में चूर्ण नामक कल्पना का कहीं स्वतंत्ररूप से पाठ नहीं मिलता अतः इन पांच प्रकार की कषायकल्पनाओं में ही कल्क नामक कषायकल्पना के अन्तर्गत ही चूर्ण का भी समावेश कर लिया जाता है। चूर्ण भी एक प्रकार का शुष्क कल्क ही है अतः आगे चलकर कल्क के प्रसङ्ग में ही चूर्ण के विषय में भी विचार व्यक्त करेंगे। औषधिनिर्माणशास्त्र में ये उपर्युक्त पाँच कषाय-कल्पनाएँ ही महत्त्व का स्थान रखती हैं क्योंकि अन्यान्य छोटी मोटी कल्पनाओं का समावेश भी इन्हीं पाँच मुख्य कल्पनाओं के अन्तर्गत कर लिया जाता है। जैसे गोलियों का निर्माण करने के पूर्व प्रयुक्त होनेवाले औषधद्रव्यों का पहले शुष्क कल्क (चूर्ण) बना लिया जाता है तब बाद में अन्य द्रव्यों तथा उप-करणों की सहायता से उस कल्क को गोलियों के रूप में बदला जाता है। इसी प्रकार घृत तथा तैलादि का स्नेहपाक या मूर्च्छन करने में भी पहले प्रयुक्त होनेवाले शास्त्रोक्त औषधद्रव्यों का कल्क अथवा क्वाथ बना लिया जाता है और फिर इन कल्क तथा क्वाथ की सहायता लेकर ही घृत या तैल का मूर्च्छन या पाक किया जाता है अतः घृतपाक व मूर्च्छन आदि का समावेश भी पञ्चविध कषायकल्पना में ही कर लिया जाता है तथा उनका स्वतंत्र रूप से कल्पना के रूप में उल्लेख नहीं किया जाता। इसी प्रकार का उदाहरण हम आसव तथा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अरिष्ट आदि की कल्पना के विषय में भी दे सकते हैं कि इन आसवों, अरिष्टों का सन्धान करने के पहले शास्त्रोक्त औषध द्रव्यों का स्वरस, कल्क, क्वाथ अथवा चूर्ण लेकर ही सन्धानक्रिया की जाती है। रस-क्रिया-निर्माण में भी पहले औषध द्रव्यों का क्वाथ, कल्क, चूर्ण आदि बनाना होता है और तब इनकी सहायता लेकर रसक्रिया नामक कल्पना (फाणित, अवलेह आदि) की जाती है। इसी कारण से उपर्युक्त पंचविध कषायकल्पनायें ही समस्त प्रकार की औषध-कल्पनाओं में मुख्य और मौलिक कल्पनायें हैं।

किसी भी कच्ची औषधि अथवा औषध द्रव्य का उसके प्राकृतिक या प्राप्य रूप में ही प्रयोग नहीं किया जा सकता किन्तु उस औषधद्रव्य को कूट पीस कर, महीन बनाकर, अथवा जल में उबालकर, स्वरस निकालकर आदि संस्कारों की सहायता से ही शरीरग्राह्य रूप में बदल दिया जाता है अतः जिन जिन क्रियाओं की सहायता से औषधद्रव्यों के रूप को बदलकर प्रयोग करने के लिये बनाया जाता है उन क्रियाओं को 'कल्पना' नामक संज्ञा दी जाती है। कल्पना शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की जा सकती है। 'कल्पनम् उपयोगार्थं प्रकल्पनम् संस्करणमिति।'

जैसा कि ऊपर चरककार का मत दिया जा चुका है कि ये औषधकल्पनायें एक समान गुरु, लघु, अधिक बलशाली या अल्प बलवाली नहीं होतीं अतः इनका प्रयोग रोग तथा रोगी के बल, काल, वय आदि का विचार कर तथा औषधकल्पना के प्रयोग का प्रयोजन देखकर तथा समझकर ही देना चाहिये। यदि रोग तथा रोगी बलवान हो तो उसके लिये स्वरस तथा कल्क नामक कषायकल्पनाओं का प्रयोग करना चाहिये, यदि रोग या रोगी मध्यम बलवाले हों तो उनके लिए क्वाथ का प्रयोग करना चाहिये और यदि रोगी अल्पबल हो तो अथवा उसका रोग भी अल्प बलवाला हो तो उसके लिये शीत तथा फाण्ट आदि कषायों की कल्पना का प्रयोग करना हितकारी होता है।

इसी प्रकार चरककार ने कल्क बनाने के पूर्व द्रव्य का विचार करने के हेतु आदेश दिया है इसलिये किसी भी औषधकल्पना का निर्माण करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि प्रयोग में लाया जानेवाला द्रव्य सूखा है या गीला, अथवा अमुक द्रव्य यदि गीला प्रयुक्त किया जाय तो अधिक प्रभावशाली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

व वीर्यवान होगा या शुष्क रूप में प्रयोग करने पर उसके रस, वीर्य, विपाक आदि के कारण अधिक प्रभावशाली होगा। अस्तु उपर्युक्त विषय पर भली प्रकार से विचार कर लेने के बाद ही औषधकल्पना के हेतु औषधद्रव्य का चुनाव करना चाहिये। इसके अतिरिक्त औषधद्रव्य के (पत्र, पुष्प, त्वचा, फल, शाखा, मूल तथा सार आदि) किस अंग में उसका वीर्य तथा प्रभाव अधिक रहता है, इसका विचार करने के बाद भी औषधिकल्पना के हेतु उस औषधद्रव्य के विशिष्ट अंग का प्रयोग करना चाहिये। इसके आगे द्रव्य के पार्थिव, जलीय, तैजस या वायव्य अंश का विचार करना चाहिये और जिस अंश में वीर्य का अधिक प्रमाण मिलता हो उसका ही उपयोगार्थ प्रयोग करना चाहिये। यथा किसी द्रव्य का वीर्य यदि पार्थिवांश में अधिक हो तो उस द्रव्य का कल्क बनाना श्रेयस्कर होता है किन्तु यदि किसी द्रव्य का वीर्य जलीय अंश में अधिक रहता है तो उस द्रव्य का स्वरस ही प्रयोगार्थ लेना चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी द्रव्य का वीर्य वायव्य या तैजस अंशों में अधिक होता हो उसके चूर्ण, कल्क, शीत, फाण्ट या अर्क आदि की कल्पना करनी चाहिये (यथा चन्दन, सौंफ, दालचीनी, लौंग आदि सुगन्धि द्रव्यों में इनका वीर्य वायव्य तथा तैजस् अंशों में अधिक रहता है) क्योंकि यदि इन द्रव्यों का क्वाथ बनाया जायगा तो वह वायव्य और तैजस अंशों के कारण गर्मी पाकर अथवा वाष्प बनकर उड़ जायगा। इसीलिए इन पदार्थों की शीत, अर्क आदि की कल्पना ही शस्त मानी जाती है। कभी-कभी एक ही औषधद्रव्य में लाभ-कारक व हानिकारक दोनों ही प्रकार के तत्त्व पाए जाते हैं अतः औषधकल्पना में लाभकारी तत्त्व तो आ जावें किन्तु हानिकारक तत्त्वों का निराकरण अथवा शमन भी हो जाय इसके हेतु कुछ और सहयोगी कल्पनाओं का प्रयोग भी किया जाता है यथा लहसुन तथा भिलावे के तीक्ष्णवीर्य प्रभाव को अल्प करने के लिये उसका क्षीरपाक कर दिया जाता है। इस क्रिया या कल्पना से उपर्युक्त लशुन, भल्लातक आदि औषधद्रव्यों के वीर्य की तीक्ष्णता में कमी आ जाती है और वह उचित मात्रा में ही उस औषधकल्पना में रह जाता है। इसी प्रकार अर्जुन नामक औषधद्रव्य में हृद्यवीर्य के साथ कषाय रस का भी अंश रहता है जो कि अवाञ्छनीय सा होता है अतः उसका निराकरण करने के हेतु भी क्षीरपाक नामक क्रिया की जाती है। उपर्युक्त क्रिया के करने से

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधद्रव्य का कषायांश अधिक मात्रा में औषध में नहीं रहने पाता और औषधद्रव्य रोग में प्रयोग करने के हेतु उपयुक्त हो जाता है आदि। उपर्युक्त वक्तव्य का तात्पर्य यह है कि शास्त्रों तथा आचार्यों के मत तथा आदेश के अनुसार बुद्धिमान वैद्य को द्रव्य की कल्पना करते समय अपनी सामान्य बुद्धि, तर्कशक्ति, आप्तवाक्यप्रमाण तथा अनुभव आदि की सहायता लेते रहना चाहिये कि किस रोगी के लिये किस प्रकार के बलवाले रोग के शमनार्थ किस द्रव्य का किस प्रकार से पाक किया जाय कि वह रोगी के रोग का नाश करे तथा वैद्य के अनुभव में वृद्धि करता हुआ उसको निरन्तर यश का भागी बनावे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरसकषायादिकल्पनाऽध्याय

स्वरसकल्पना—स्वरस का परिचय देते हुए आचार्य चरकसंहिता में कहते हैं कि 'यन्त्रनिष्पीडिताद्द्रव्याद्रसः स्वरस उच्यते।' (च. सू. अ. ४) यन्त्र में दवाकर निकाले गये द्रव्य के रस को स्वरस कहा जाता है। इसी प्रकार की परिभाषा अष्टांगहृदयकार ने भी दी है यथा 'सद्यः समुद्धृतात् क्षुण्णाद्यः स्रवेत् पटपीडितात्। स्वरसः समुद्दिष्टः ··॥' (अ. हृ. क. अ. ६) अर्थात् कृमि आदि से रहित तथा दोषरहित ताजी व हरी वनस्पति लाकर, उसको सम्यक् रूप से जल से धोकर तथा उसके छोटे-छोटे टुकड़े करने के बाद उसको उलूखल (ऊखल) में कूटकर अथवा शिलापट्ट (सिलौटी) पर डाल कर शुद्ध किये हुये प्रस्तरखण्ड (पत्थर के टुकड़े या लोढ़ा) से पीस कर तैयार हुई लुगदी को यन्त्र में अथवा हाथ से निष्पीडन कर (दबाकर) रस निकाल ले। तत्पश्चात् उस निकले रस को शुद्ध धुले हुए महीन कपड़े से छान ले। इस प्रकार की क्रिया से प्राप्त रस को स्वरस कहते हैं। शार्ङ्गधरसंहिताकार भी स्वरस के परिचय के विषय में अपना मत प्रदर्शित करते हैं कि 'आहृतात्तत्क्षणकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः। वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते॥' (शार्ङ्ग. सं. म. ख. $\frac{1}{2}$) अर्थात् तुरन्त उखाड़कर लाई हुई औषधि को कूटकर वस्त्र द्वारा निचोड़ने से जो रस निकले, उसको स्वरस कहते हैं। इसी प्रकार वैद्यकपरिभाषाप्रदीप नामक आयुर्वेदीय ग्रंथ में भी स्वरस के विषय में एक अच्छी परिभाषा मिलती है। यथा—'सद्यः क्षुण्णार्द्रद्रव्यस्य वस्त्र-यन्त्रादिपीडनात्। यो रसस्त्वभिनिर्य्याति स्वरसः स प्रकीर्तितः॥' (वै. प. प्र. द्वि. ख. ३) अर्थात् तुरत ही कुटी हुई गीली वस्तु को यन्त्र अथवा कपड़े की पोट्टली में रखकर निचोड़ने से जो रस निकलता है, वही 'स्वरस' कहलाता है। आगे भी एक मतान्तर का निदर्शन करते हुए आचार्य कहते हैं कि 'आहृत्य तत्क्षणाकृष्टात् क्षुण्णाद् द्रव्यात् समुद्धरेत्। वस्त्रनिष्पीडितो यस्तु स्वरसो रस उच्यते॥' (वै. प. प्र. द्वि. ख. ४) न विगड़ी हुई (अदूषित) गीली दवा जो कि तत्क्षण उखाड़कर लाई गई है तथा कूटी गयी है, उसको कपड़े में रखकर निचोड़ने से जो रस निकल आता है वही स्वरस कहलाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

स्वरस के विषय को एलोपैथिक चिकित्साविज्ञान की द्रव्यगुणनिघण्टु (मेटीरिया मेडीका) में निम्नलिखित शब्दों में बताया गया है कि 'Expression is the process by which we press out juices and oils from vegetable substances, as in the preparation of succi, or squeeze out the liquid from the marc as in the preparation of tinctures. For this process suitable presses are required.' (Pharmacology, Materia Medica and Therapeutics by B. N. Ghosh. (P. P. 7) अर्थात् प्रपीडन अथवा 'निचोड़ना' नामक क्रिया के द्वारा औषधद्रव्य को दबाकर उसका स्वरस अथवा तेल निकाला जाता है। इसी प्रकार क्वाथ अथवा फाण्ट आदि में भीगी हुई औषधि (Marc) को दबाकर उससे सीठी (निःसार भाग) पृथक् करके अभीष्ट अंश को प्राप्त किया जाता है। टिंक्चर्स के निर्माण में भी इस प्रक्रिया का उपयोग होता है। इस प्रक्रिया के लिये आजकल प्रपीडक यंत्रों (Express Machines) का प्रयोग होता है।

यूनानी वैद्यक में स्वरस के लिये 'असीर' जो कि अरबी भाषा का शब्द है तथा 'अफसुर्दा' जो कि फारसी भाषा का शब्द है प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य वैद्यक ग्रंथों में इसके लिए सक्कस (Succus) (लेटिन भाषा का) तथा एक्सप्रेस्ड जूस (Expressed juice) (अंग्रेजी भाषा के शब्द का) नामक संज्ञा का प्रयोग किया जाता है।

शुष्क द्रव्य से स्वरस प्राप्त करने की विधि—ऊपर लिखे वर्णन से तो आर्द्र औषधि से स्वरस प्राप्त करने की विधि बताई गई है किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि स्वरस निकालने के लिए आर्द्र औषधि प्राप्त नहीं होती तो भी औषधिनिर्माण में आवश्यकता पड़ जाने पर शुष्क द्रव्य से स्वरस निकालने की विधि के विषय में आचार्य कहते हैं कि 'स्वरसानामलाभे त्वयं स्वरसविधिः—चूर्णानामाढकमाढकमुदकस्याहोरात्रस्थितं मृदितपूतं स्वरसवत् प्रयोज्यम् ॥' (च. चि. अ. १।२) यदि गीले व ताजे (आर्द्र व हरी) औषधद्रव्य का स्वरस न मिले तो उसी औषधद्रव्य के सूखे द्रव्य का आवश्यकतानुसार चूर्ण करने के उपरान्त उतने ही जल में डालकर एक मिट्टी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के पात्र में भरकर लगभग चौबीस घंटे तक रख दे, फिर दूसरे दिन उस द्रव्य को भली प्रकार हाथ से मसले। तदुपरान्त कपड़े से छानकर निकले हुए रस का स्वरस की भाँति ही स्वरस के स्थान पर प्रयोग करे। इस प्रकार बनाये हुए स्वरस का प्रयोग विशेषकर चूर्ण को भावना देने के हेतु होता है। इस अनुकल्प के विषय में परिभाषाप्रदीप के विद्वान् लेखक का मत है कि 'कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्रं तद् द्विगुणे जले। अहोरात्रं स्थितं तस्मात् भवेद्वा रस उत्तमः॥' (वै. प. प्र. द्वि. खं. ५) एक कुड़व शुष्क (सूखा) द्रव्य लेकर कूट-पीसकर महीन (बारीक) कर ले, फिर द्विगुण (दुगुने) जल में डालकर एक रात और एक दिन अर्थात् २४ घण्टे तक रखा रहने दे। तदुपरान्त उसको मसलकर व कपड़े में रखकर रस निचोड़ ले। इस प्रकार भी उत्तम प्रकार का स्वरस प्राप्त होता है। एक अन्य मत का वर्णन करते हुए परिभाषा-प्रदीप के विद्वान् लेखक महोदय लिखते हैं कि 'आदाय शुष्कं द्रव्यं वा स्वर-सानामसम्भवे। जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं तु गृह्यते॥' (वै. प. प्र. द्वि. खं. ६) स्वरसवाली गीली औषधों के न मिलने पर सूखी ही ले लेवे तथा आठगुने जल में डालकर गरम करे। चौथाई शेष रह जाने पर उतारकर छान ले। यह भी एक प्रकार का स्वरस होता है। शार्ङ्गधरसंहिता में भी अनुकल्प के सम्बन्ध में इसी प्रकार के भाव का श्लोक मिलता है। यथा 'कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे चले। अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः॥' (शार्ङ्ग. सं. म. ख. अ. १।३) तथा 'आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे। जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते॥' (शार्ङ्ग. सं. म. ख. अ. १।४)।

स्वरस के विषय को भली प्रकार समझने के लिए, उदाहरण के हेतु तथा प्रयोगात्मक रूप से समझने के लिए निम्नलिखित प्रयोग सहायक होगा।

प्रयोग संख्या १

तुलसीपत्र से स्वरस निकालना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
तुलसीपत्र	२ तोला	×	×	१—खरल। २—स्वच्छ तथा महीन वस्त्र।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विधि—खरल को स्वच्छ जल से धो लिया। तत्पश्चात् उसमें भली प्रकार धोये हुए ताजे तुलसी के पत्र डालकर अच्छी तरह से घोटा व पीस लिया। जब वह कुटकर महीन हो जाय और उसमें से रस निकलने लगे तो एक स्वच्छ तथा महीन कपड़े में रखकर दूसरे स्वच्छ पात्र में (पत्तों की लुगदी को) निचोड़ लिया। इस प्रकार तुलसीपत्र का स्वरस निकल आया।

मान—दो तोला तुलसीपत्रों से एक तोला स्वरस प्राप्त हुआ।

सावधानियाँ—(१) पत्रों को धोने के पश्चात् खरल सुखा लेना चाहिये अन्यथा स्वरस में जल का अंश भी मिल जायगा।

(२) घोटते समय पत्र तथा उसका कल्क खरल (पात्र) के बाहर नहीं गिरना चाहिये अन्यथा स्वरस के मान में न्यूनता आ जायगी।

प्रयोग-संख्या २

शुष्क चने के पत्तों का स्वरस निकालना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
शुष्क चने के पत्र	२½ तोला	जल	५ तोला (एक छटाँक)	१—ताम्बे का पात्र २—एक खरल ३—एक स्वच्छ धुला हुआ महीन वस्त्र

विधि—सूखे हुए चने के पत्तों को लेकर एक ताम्र के पात्र में (जिसमें लगभग १ पाव पानी भरा जा सकता हो) डाल दिया और उसी पात्र में एक छटांक ठण्डा पानी भी छोड़ दिया। तदुपरान्त उस पात्र को एक रात तक वैसा ही रखा रहने दिया। दूसरे दिन उस ताम्रपात्र के भीतर स्थित चने के पत्र जल को सोख लेने के कारण फूलकर ताजे चनों के पत्तों के समान हो गये। फिर उन चने के पत्रों को खरल में डालकर कूटकर बारीक करके लुगदी बना ली और उस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तैय्यार लुगदी को स्वच्छ तथा धुले हुये महीन कपड़े के चौकोर टुकड़े में रखकर दूसरे पात्र में पोटली को हाथों से दबाकर रस निकाल लिया। इस प्रकार की क्रिया करने से हरे रङ्ग का चने के पत्तों का रस निकल आया। यह शुष्क (चने के) पत्रों का स्वरस हुआ।

मान—नपने गिलास में लेकर नापने से लगभग डेढ़ तोला स्वरस प्राप्त हुआ।

ज्ञातव्य—(१) चने के पत्र (हरे) मार्च महीने के बाद नहीं प्राप्त हो सकते और इनका स्वरस अथवा शर्बत दाहजन्य ज्वर को तथा लू आदि लग जाने पर अप्रतिम लाभ पहुँचाने वाला होता है अतः औषधि-रूप में प्रयोग करने के लिये ये पत्र सुखाकर अवसर आने पर काम में लाये जाने के हेतु रख लिये जाते हैं।

(२) पात्र स्वच्छ तथा चिकनाईरहित होना चाहिये। चीनी मिट्टी अथवा काँचनिर्मित पात्र का प्रयोग भी किया जा सकता है।

स्वरस की मात्रा :—स्वरस की मात्रा के विषय में शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है कि 'स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत्। निशोषितं चाग्नि-सिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्।' (शार्ङ्गधर सं. म. खं. अ. १) स्वरस गुरु (स्वभाव) होता है अतः उसका आधे पल की मात्रा में प्रयोग करना चाहिये और ऊपर कही हुई विधि से रात भर तक पानी में भिगोए हुए अथवा अग्निसिद्ध (अग्नि पर पकाकर चतुर्थांश शेष बचाए हुए) रस को एक पल की मात्रा में पीना चाहिए। इसी प्रकार एक और विद्वान का मत है कि 'स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत्। अहोरात्रोषितं चाथ पलमात्रं रसं पिबेत्।' कषायों की सब कल्पनाओंमें स्वरस गुरु और बलाधिक होनेसे उसकी आधे पल (२ तोले) की मात्रा पानार्थ देनी चाहिये। यह मात्रा मृदुवीर्य औषधियों की समझनी चाहिये किन्तु मध्यमवीर्यवाली औषधों का स्वरस उपर्युक्त मात्रा की आधी मात्रा में अर्थात् दो तोला और यदि तीक्ष्णवीर्यवाली औषध के स्वरस का सेवन कराना हो तो इसकी चौथाई मात्रा (१ तोला) मात्रा देनी चाहिये तथा अनुकल्प विधि से निकाले हुए स्वरस की मात्रा ताजे स्वरस की मात्रा से दो गुनी (अर्थात् १ पल = ४ तोला) पानार्थ देनी चाहिये।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कतिपय आयुर्वेदोक्त प्रसिद्ध स्वरस, उनके गुण तथा प्रयोग

(१) अमृतादिस्वरस—'अमृतायाः रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित्। हारिद्रचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्या समाक्षिकः॥' अर्थात् गुडूची का स्वरस मधु मिलाकर पीने से अथवा आमले का स्वरस हल्दी का चूर्ण मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रमेहों को दूर करता है।

(२) द्रोणपुष्पीस्वरस—'पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः। द्रोणपुष्पी रसो वाऽपि निहन्ति विषमज्वरान्॥' अर्थात् तुलसी के पत्तों का रस अथवा द्रोणपुष्पी का रस काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से विषम-ज्वर शान्त होता है।

(३) जम्ब्वादिपत्रस्वरस—'जम्ब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत्। मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्वणम्॥' अर्थात् जामुन, आम और आँवले के पत्तों का रस मधु, घी तथा दूध के साथ मिलाकर पीने से बढ़े हुए अतीसार रोग को शान्त करता है।

(४) आर्द्रकस्वरस—'आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत्। श्वासकासारुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति॥' अर्थात् अदरक का रस मधु के साथ मिलाकर पीने से अण्डकोषगत वात तथा श्वास, कास, अरुचि और प्रतिश्याय (जुकाम) को शान्त करता है।

(५) गांगेरुकीस्वरस—'खड्गादिछिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः। गांगेरुकीमूलरसैः जायते गतवेदनः॥' अर्थात् तलवार आदि से कट जाने पर घाव में तुरन्त ही गंगेरन (नागबला) की जड़ का रस भर देने से घाव की पीड़ा दूर हो जाती है।

(६) मुण्डीरस—'रसो मुण्ड्याः सकोष्णो वा मरिचैरवधूलितः। जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ॥' अर्थात् गोरखमुण्डी के रस को कुछ गरम करके तथा उसमें काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर सात दिन तक पीने से सूर्यावर्त तथा अर्धावभेदक (आधासीसी) रोग दूर हो जाता है।

(७) ब्राह्मीस्वरस—'ब्राह्मीकूष्माण्डषड्ग्रंथाशंखिनीस्वरसाः पृथक्। मधुकुष्ठयुताः पीताः सर्वोन्मादापहारकाः॥' अर्थात् ब्राह्मी, सफेद कुम्हड़ा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(पेठा), वच तथा शंखपुष्पी इनमें से किसी एक के स्वरस को मधु तथा कूठ के चूर्ण के साथ मिलाकर पीने से सभी प्रकार का उन्माद रोग दूर होता है तथा मेधाशक्ति बढ़ती है।

पुटपक्वस्वरस—कई बार औषधार्थ नीम, अडूसा, बिल्व आदि वृक्षों के पत्रों का स्वरस प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ जाती है और उपर्युक्त वृक्षों के पत्तों का स्वरस (बिना पत्ती तथा छाल आदि को गरम किये) ठीक से उचित मात्रा में नहीं प्राप्त होता अतः उनसे स्वरस प्राप्त करने के हेतु आचार्यों ने पुटपाक की कल्पना की है। शार्ङ्गधरकार ने भी निम्नलिखित विधि का उल्लेख अपनी संहिता में किया है यथा 'पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता। लेपं च व्यङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्वाऽङ्गुष्ठमात्रकम् ।। काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ।। पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः। अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ।।' (शार्ङ्ग. सं. म. ख. अ. १।२१-२३)अर्थात् पुटपाक तथा कल्क का स्वरस लिया जाता है, इसलिये यहाँ पुटपाक की युक्ति मेरे द्वारा बतलाई जाती है। पुटपाक का विधान यह है कि आर्द्रद्रव्य लेकर कूट-पीसकर एक गोला बना लें और उस गोले को काश्मरी (गम्भारी), वरगद या जामुन आदि के पत्तों में लपेटकर सूत से लपेटकर बाँध दे। फिर इस गोलामय 'पत्रपिण्ड' पर दो अंगुल अथवा अँगूठे के बराबर मोटाईवाला चिकनी मिट्टी का लेप कर दें। उसके बाद उपलों (कण्डों) की आँच में उस गोले को रखकर पकावें और तब तक पकावें जब तक ऊपर लपेटी हुई मिट्टी का रंग अङ्गार के वर्ण का अथवा लाल न हो जावे। तदुपरान्त उस गोले को आग के बाहर निकालकर ऊपर की मिट्टी और वटपत्रादि के आवेष्टनों को दूर कर दें और पकाए हुए गोले को कपड़े में रखकर निष्पीड़न कर रस प्राप्त कर लें। यही पुटपक्वविधि से प्राप्त स्वरस हुआ। 'परिभाषाप्रदीप' के विद्वान् लेखक भी पुटपक्वविधि से स्वरस प्राप्त करने के हेतु निम्नलिखित विधि का वर्णन देते हैं। 'पुटे पक्वस्य द्रव्यस्य स्वरसो गृह्यते यतः। अतोऽयं पुटपाकः स्याद् विधानं तस्य कथ्यते ।। द्रव्यमापोत्थितं जम्बूवटपत्रादिसम्पुटे। वेष्टयित्वा ततो बद्ध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा। मृल्लेपं द्व्यंगुलं कुर्यादथवांगुलिमात्रकम्। दहेत् पुटान्तरादग्नौ यावल्लेपस्य रक्तता।।'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्थात् द्रव्यों को पुट में पकाकर उसका स्वरस ग्रहण किया जाता है इसलिये इसे 'पुटपाक' कहते हैं। अब आगे इसका विधान कहते हैं। द्रव्य को जल में पीसकर लुगदी बना ले, फिर उसका गोला बनाकर जामुन अथवा बरगद (वट) आदि के पत्तों के सम्पुट में लपेटकर डोरे से अच्छी तरह बाँध देवें। फिर उसके ऊपर दो अंगुल अथवा एक ही अंगुल मोटा मिट्टी का लेप कर देवें और ऊपर-नीचे जंगली उपलों की आग देकर पुटपाक करें। जब ऊपर की मिट्टी का रंग लाल हो जावे तो पुट को सिद्ध हुआ मानकर आग से निकाल लें और पुट को तोड़कर लपेटे पत्तों को हटाकर पक्व लुगदी के गोले को महीन तथा स्वच्छ कपड़े में रखकर दबाकर स्वरस प्राप्त कर लें। एक और ग्रन्थ में पुट-पक्व रस प्राप्त करने की विधि का निम्नलिखित वर्णन मिलता है यथा—

'पुटपक्वस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः। अतस्तु पुटपाकस्य विधिरत्रोच्यते मया॥ द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं च सजलं ततः। गोलं विधाय वृक्षाणां पत्रैरावेष्टयेद्दृढम्॥ सूत्रेण बद्ध्वा गोधूमपिष्टेन परिवेष्टयेत्। तद् आर्द्रमृदा लिप्त्वा गोमयाग्नौ प्रतापयेत्॥ अङ्गारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत। ततो रसं वस्त्रपूतं पुटपक्वं प्रदापयेत्॥' अर्थात् कई द्रव्यों का पुटपाक करके स्वरस लिया जाता है इसलिये पुटपाक करने की विधि लिखते हैं—द्रव्य आर्द्र हो तो उसको वैसा ही शिला पर पीसकर कल्क करें, यदि सूखा हो तो उसका कपड़छान चूर्ण कर उसमें थोड़ा जल मिलाकर कल्क (लुगदी) बनावें। बाद में उस कल्क का गोला बनाकर, उस पर बरगद, जामुन, कमल आदि किसी मृदुवीर्य वनस्पति के पत्ते लपेटकर गोले को सूत से मजबूती से बाँधकर ऊपर जल में मसली हुई मिट्टी का दो अंगुल मोटा लेप करके गोला बना लें। तत्पश्चात् उस गोले को अंगीठी में निर्धूम कण्डों की आँच में रखकर पकावें। जब गोले के ऊपर की मिट्टी आँच से पककर लाल हो जावे तब गोले को थोड़ा सा ठंढा करके उसके ऊपर की मिट्टी, सूत और पत्ती को निकालकर अलग कर दें। फिर भीतर से प्राप्त कल्क के गोले को कपड़े में रखकर हाथ से दबाकर तथा निचोड़कर पुटपक्व स्वरस प्राप्त कर लें।

इस प्रकार का स्वरस बेल, नींबू, नीम, अडूसा आदि वृक्षों के पत्तों से

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

निकाला जाता है। एक और सरल तरीके से भी इन वृक्षों के पत्तों का स्वरस प्राप्त किया जा सकता है। यथा—एक आधे जल भरे हुये चौड़े मुख के पात्र पर एक ढीला कपड़ा बाँध दें फिर उस पर पानी से धोई हुई पत्तियाँ रख दें और तब उस पात्र पर थाली ढककर चूल्हे पर चढ़ा दें और १०-१५ मिनट तक गरम होने दें। इसके बाद बरतन से पत्तियों को निकालकर तुरत ही सिल पर रखकर पीस डालें और तैयार हुई लुगदी को कपड़े में रखकर हाथ से दबाकर स्वरस निकाल लें। ऐसा करने से भी पुटपक्व स्वरस प्राप्त हो सकता है।

प्रयोग-संख्या ३

वासा (अडूसे के) पत्र का पुटपक्व स्वरस निकालना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
वासापत्र	२ तो०	×	×	१. वटपत्र। २. स्वच्छ वस्त्र। २. अग्निमय अँगीठी।

विधि—वासापत्र को हाथ में मसलकर उसे वटपत्र में लपेटकर धागे से बाँध दिया। तत्पश्चात् उसके ऊपर लगभग एक इञ्च मोटाई तक चिकनी मिट्टी का लेप कर दिया और फिर उसको धूप में सुखा लिया। सूख जाने पर गोले को अग्नि में तब तक तपाया जब तक कि उसके ऊपर की मिट्टी का रंग लाल न हो गया। फिर गोले को अग्नि से निकालकर ठंडा हो जाने दिया और शीतल हो जाने पर गोले की मिट्टी तोड़कर सूत्र और वटपत्र के आवरण को हटाकर वासापत्र निकालकर स्वच्छ वस्त्र में रखकर हाथों से दबाकर स्वरस निकाल लिया।

परिणाम—इस प्रकार पुटपक्वस्वरस निकल आया।

मान—२ तोला वासापत्रों से १ तोला स्वरस प्राप्त हुआ।

सावधानियाँ—(१) वस्त्र तथा वासापत्र स्वच्छ होने चाहियें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(२) मिट्टी का लेप अधिक मोटा अथवा अधिक पतला न हो अन्यथा गोले में स्थित पत्रों को भली प्रकार आँच नहीं लग पाती।

(३) अग्नि का ताप ठीक मात्रा में लगना चाहिये। जल जाने पर अथवा अपक्व रह जाने पर स्वरस का मान ठीक न होगा तथा उसके गुणों में भी न्यूनता आ जावेगी।

स्वरस में प्रक्षेप का प्रमाण—इस विषय पर शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है कि 'मधुश्वेतागुणक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा। घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रं रसे क्षिपेत् ॥' (शा. सं. म. ख. अ. १।६) मधु, मिश्री, गुड़, क्षार, जीरा, लवण तथा घृत, तैल, चूर्ण आदि को स्वरस में (यदि आवश्यकता प्रतीत होती हो तो) १ कोल (आठ माषा या अर्धकर्ष) मात्रा में डालना चाहिये। तथा एक अन्य ग्रन्थकार का मत है कि 'घृतं सिता गुडं क्षौद्रं कोलमात्रं रसे क्षिपेत्। लवणक्षारचूर्णानि योग्यमानानि दापयेत् ॥' स्वरस में घी (अथवा तेल), मिश्री, गुड, मधु आदि का प्रक्षेप डालना हो तो दो तोले स्वरस में आधे तोले के प्रमाण में डाले। लवण, क्षार और पीपल आदि का चूर्ण रोग तथा रोगी का बल देखकर उचित मात्रा में डालना चाहिये।

कतिपय प्रसिद्ध आयुर्वेदोक्त पुटपक्वरस, उनके गुण तथा प्रयोग

(१) सूरणपुटपाक—'सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत्। सतैल-लवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ॥' अर्थात् सूरणकन्द पुटपाकविधि से पकाया जाय तथा उसके निकाले गये पुटपक्व रस को तिल तैल और सैन्धव लवण मिलाकर सेवन करने से वह अर्श (बवासीर) को नष्ट करता है।

(२) बीजपूरादिपुटपाक—'बीजपूराम्रजम्बूनां पल्लवानि जटाः पृथक्। विपचेत् पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः। छर्दिं निवारयेद् घोरां सर्वदोषस-मुद्भवाम् ॥' अर्थात् बिजौरा, आम और जामुन के पत्तों व जटा का पूर्वोक्त विधि से पृथक्-पृथक् पुटपाक किया जाय तथा पुटपक्व स्वरस प्राप्त किया जाय। उन रसों का मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की घोर छर्दि (वमन) दूर होती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(३) दाडिमपुटपाक—'पुटपाकेन विपचेत्सुपक्वं दाडिमीफलम्। तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः ॥' अर्थात् पके हुए अनार को पूर्वोक्त पुटपाकविधि से पकाकर उसके रस का मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के अतिसार दूर होते हैं।

(४) वासापुटपाक—'पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः। मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान्॥' अर्थात् अडूसे के पत्तों का पीसकर पुटपाक विधि से निकाला हुआ रस मधु के साथ पीने से रक्तपित्त, खाँसी, ज्वर तथा क्षय रोग दूर होते हैं।

(५) कण्टकारीपुटपाक—'पचेत्क्षुद्रां सपञ्चाङ्गां पुटपाकेन तद्रसः। पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः ॥' अर्थात् छोटी कटेरी के पञ्चाङ्ग (मूल, पत्र, पुष्प, फल तथा काण्ड) का पुटपाक कर निकाला हुआ रस पीपल के चूर्ण के साथ पीने से खाँसी, श्वास तथा कफ का विकार शान्त होता है।

स्वरस तथा उनका प्रयोग—स्वरसों का प्रयोग निम्नलिखित रूप में किया जाता है—

१—स्वरस गुरु और पञ्चविध कषायकल्पना में सबसे अधिक बलिष्ठ होने के कारण रोग तथा रोगी की बलवती अवस्था में प्रयोग किया जाता है।

२—ओषधि के गुणों में वृद्धि करने के लिए उसी औषध के चूर्ण को उसी औषध के स्वरस की भावना देने के लिये प्रयोग किया जाता है।

३—ओषधि के दोषों के परिहार के लिये भी स्वरस का प्रयोग 'भावना' के रूप में किया जाता है।

४—रसौषधों की गुणवृद्धि के हेतु अथवा उनके दोषों का निराकरण करने के लिये वानस्पतिक ओषधियों के स्वरस का प्रयोग 'भावना' देने के लिये किया जाता है।

५—कई ओषधियों तथा रसौषधियों के साथ अनुपान के रूप में स्वरस का प्रयोग होता है।

६—धातुओं की भस्म बनाने के हेतु भी उनमें वनस्पतियों की भावना देने के लिये स्वरस का प्रयोग किया जाता है, इत्यादि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तण्डुलोदक—इसका वर्णन भी इसी अध्याय में पीछे किया गया है क्योंकि एक प्रकार से स्वरस के सिद्धान्तों पर ही इसकी कल्पना निर्भर रहती है। इसीलिए शार्ङ्गधरसंहिताकार ने भी तण्डुलोदक-कल्पना का वर्णन स्वरस-प्रकरण में ही किया है, यथा 'कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु॥' (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. १।२८) अर्थात् एक पल निस्तुषीकृत (छिलका या भूसी उतारा हुआ) चावल लेकर अठगुने जल में कुछ देर भिगो कर रखें। फिर उस पानी को कपड़े से छान लें और आवश्यकतानुसार इसका उपयोग करें।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कल्ककषायादिकल्पनाऽध्याय

कल्क, कषाय तथा चूर्णकल्पना

अष्टांगसंग्रह नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थ में कल्क का परिचय निम्न लिखित रूप में दिया हुआ है—'उपलदशनादिभिः पिष्टस्तु कल्कः।' अर्थात् शिला पर अथवा दाँतों से महीन पीसे हुये औषधद्रव्य को कल्क कहते हैं। अन्य ग्रन्थ में कल्क के विषय में निम्नलिखित वर्णन मिलता है—'द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम्। तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्यभिधीयते॥ आवापस्त्वथ प्रक्षेपस्तस्य पर्याय उच्यते॥' अर्थात् गीला द्रव्य अथवा जल मिलाकर सूखे द्रव्य को शिला पर पीसकर जो लुगदी सी बना ली जाती है, उसे ही विद्वान् लोग 'कल्क' नाम से पुकारते हैं। उसके दूसरे नाम (पर्याय) आवाप तथा प्रक्षेप भी हैं। चरकसंहिता में भी कल्क के विषय में आचार्य कहते हैं—'यः पिण्डो रसपिष्टानां स कल्कः परिकीर्तितः॥' (च. सू. अ. ४), शार्ङ्गधरसंहिता में भी कल्क के विषय में निम्नलिखित मत लिखा प्राप्त होता है—'द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत्। प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम्॥' (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. ५।१) अर्थात् आर्द्र (ताजे तथा गीले) औषधद्रव्य को शिला पर पीसकर अथवा सूखी ओषधि को जल के साथ शिला पर पीसकर पिण्ड (गोला) बनाने को कल्क कहते हैं। इसके नाम प्रक्षेप और अवाप भी हैं। आचार्य इसकी मात्रा का निर्देश करते हुए कहते हैं कि इसकी भक्षण-मात्रा एक कर्ष तक की है।

इस प्रकार यदि कल्क बनाने के हेतु द्रव्य लेना हो तो उसको जल से धोकर तथा यदि शुष्क हो तो उसको पीसकर उसके कपड़छन चूर्ण में जल मिलाकर शिलापर (सिलौटी पर) अथवा दाँतों से ही महीन चबाकर पीस लें। इसी महीन पिसे हुए आर्द्र चूर्ण के गोले या लुगदी को कल्क, प्रक्षेप या आवाप कहते हैं। इनमें से जिस लुगदी का प्रयोग खाने के लिये किया जाता है उसे कल्क कहते हैं तथा घृतपाक, मूर्च्छन, तैलमूर्च्छन, पाक अथवा आसवारिष्टों के सन्धान करने के हेतु जिस औषध-द्रव्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की लुगदी प्रयोग की जाती है उस लुगदी, पिण्ड या गोले के लिये तीनों पर्यायों (कल्क, प्रक्षेप तथा आवाप) का प्रयोग किया जाता है।

हम पीछे के अध्याय में कह चुके हैं कि स्वरस में केवल द्रव्य का सारभाग ही लिया जाता है तथा काष्ठभाग निरर्थक एवं निष्प्रयोज्य समझ कर फेंक दिया जाता है किन्तु कल्क में औषध-द्रव्य के दोनों भागों (सारभाग तथा काष्ठभाग) का प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि स्वरस की अपेक्षा आचार्यों ने कल्क को लघु स्वभाव वाला माना है। कल्क बनाते समय चिकित्सक को औषध-द्रव्य के सभी अंगों की उपादेयता पर विशेष ध्यान देना चाहिये, जैसे विशिष्ट औषध-द्रव्य के वीर्य (सार-भाग) उसके आर्द्र अंश तथा काष्ठभाग दोनों में ही प्राप्त होते हों तो ऐसे द्रव्य के गुणों का पूरा लाभ उठाने के लिये उसका कल्क बनाना श्रेयस्कर होता है। उदाहरणार्थ लशुन (लहसुन) के गुणों का चिकित्सा में पूरा लाभ उठाने के लिये कल्क के रूप में प्रयोग करना युक्तियुक्त होता है। इसी प्रकार और भी कई द्रव्य ऐसे होते हैं जिनका कल्क हम शिला पर पीसकर अथवा दाँतों से चबा कर नहीं बना सकते। ऐसे द्रव्यों को पत्थर के चकले पर रगड़ रगड़ कर अथवा जल के साथ घिस घिस कर कल्क के रूप में प्राप्त किया जा सकता है, यथा हरड़ तथा चन्दन आदि।

आचार्यों ने दाँतों से चबाकर भी कल्क बनाने का साधन बताया है किन्तु इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि औषधद्रव्य को मुख में डालकर उसका रस चूस लिया जाय और उसकी खुजड़ी (सीठी) को थूक दिया जाय तो वह उस औषध-द्रव्य के स्वरस भाग का ग्रहण करना होगा कल्क का कदापि नहीं किन्तु यदि उस औषध-द्रव्य के स्वरस व खुजड़ी वाले भागों का सेवन दाँतों से महीन पीसकर लुगदी बना-कर किया गया है तो वास्तव में उसको कल्क संज्ञा देना उचित होगा।

यूनानी वैद्यक में कल्क के लिये नुग़दा शब्द का प्रयोग किया जाता है। सम्भवतः हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले अपभ्रंश शब्द 'लुगदी तथा लुबदी' इसी शब्द से बिगड़कर बने प्रतीत होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोगसंख्या ४

वासापत्र का कल्क तैयार करना।

द्रव्य नाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
वासापत्र	२ तो०	×	×	खरल

विधि—सबसे पहले खरल को धोकर साफ कर लिया। फिर उसमें वासापत्रों को पानी से धोकर डाला और मुसलदण्ड से धीरे-धीरे कूटते हुए उन्हें महीन कर लिया। बाद में उस लुगदी का गोला बना लिया।

परिणाम—इस प्रकार वासापत्र का कल्क (लुगदी) बन कर तैयार हुआ।

मान—दो तोला वासापत्रों से दो तोला वासापत्र-कल्क प्राप्त हुआ।

सावधानियाँ—(१) खरल को धोने के बाद साफ कपड़े से पोंछ कर सुखा लेना चाहिये।

(२) वासापत्रों को कूटते समय उन्हें को खरल में से बाहर नहीं गिरने देना चाहिये नहीं तो कल्क के मान में अन्तर पड़ जायगा।

कल्क की मात्रा—इसके विषय में शार्ङ्गधरकार ऊपर कह ही चुके हैं—'तन्मानं कर्षसंमितम्।' अर्थात् कल्क की मात्रा १ कर्ष (१ तोले) की है। किन्तु यह मात्रा मृदुवीर्यवाले औषध-द्रव्य के कल्क की जाननी चाहिये; मध्यम-वीर्यवाले औषध-द्रव्य की मात्रा आधा कर्ष और तीक्ष्णवीर्य औषधद्रव्य के कल्क की मात्रा चौथाई तोला होनी चाहिये।

कल्क में प्रक्षेप द्रव्य का प्रमाण—शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है—'कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया। सिता गुडं समं दद्यात् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः॥' अर्थात् कल्क में यदि शहद, घी तथा तेल मिलाना हो तो कल्क से दुगुना मिलावे, यदि शक्कर अथवा गुड़ डालना हो तो कल्क के समान देवे तथा द्रवपदार्थ—जल अथवा दूध आदि मिलाना हो तो कल्क से चौगुना मिलावे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आयुर्वेदोक्त कतिपय प्रसिद्ध कल्क, उनके गुण तथा प्रयोग

(१) वर्धमान-पिप्पली-कल्क—'त्रिवृद्ध्या पञ्चवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याऽथवा कणाः। पिबेत् पिष्ट्वा दशदिनं तांस्तथैवापकर्षयेत्॥ एवं विंशद्दिनैः सिद्धं पिप्पलीवर्धमानकम्। अनेन पाण्डुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः। उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यन्त्युरोग्रहाः॥' अर्थात् प्रतिदिन तीन-तीन, पाँच-पाँच अथवा सात-सात पीपल बढ़ाकर और उनको कल्कविधि से पीस कर दस दिन तक (दूध के साथ) पिया जाय और इसी प्रकार (वृद्धि-क्रम के अनुसार ही) घटाकर दस दिन तक उसका सेवन किया जाय (अर्थात् जिस क्रम से बढ़ाई जाय उसी क्रम से दस दिन तक घटाई जाय)। इस प्रकार बीस दिन सेवन करने से वर्धमानपिप्पली का सिद्ध प्रयोग होता है। इससे पाण्डुरोग, वातरक्त, कास, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदर-विकार, अर्श, क्षय, कफ, वात और उरोग्रह ये सभी रोग नष्ट होते हैं।

(२) निम्बकल्क—'लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः। भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत्॥' अर्थात् नीम के पत्तों को पीसकर व्रण पर लेप लगाने से व्रण (घाव) शुद्ध होकर भर जाता है तथा निम्ब-कल्क को खाने से वमन, कुष्ठ, पित्त, कफजन्य विकार तथा कृमि-रोग नष्ट होते हैं।

(३) रसोनकल्क—'शुद्धः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः। वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान् विषमज्वरनाशनः॥' अर्थात् छिलके अलग करके शुद्ध किये लहसुन का कल्क बनाकर उसे तिल-तैल से मिश्रित कर सेवन करने से कठिन वातरोगों की शान्ति होती है तथा विषमज्वर नष्ट होता है।

(४) शुण्ठीकल्क—'शुण्ठीतिलगुडैः कल्को दुग्धेन सह योजयेत्। परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत्॥' अर्थात् सोंठ, तिल और गुड़ के कल्क को दूध मिलाकर सेवन करने से परिणामशूल और आमवात नष्ट होते हैं।

चूर्णकल्पना—हम पिछले अध्याय में ही लिख आये हैं कि कल्क नामक कषायकल्पना के अन्तर्गत ही चूर्ण का समावेश भी कर लिया जाता है तथा चूर्ण भी एक प्रकार का शुष्क कल्क ही है। इस प्रकार इस

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चूर्ण नामक कल्पना का वर्णन भी हम कल्ककषायकल्पना के अध्याय में ही करेंगे। चूर्ण के विषय में शार्ङ्गधरसंहिताकार लिखते हैं—'अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। तत्स्याच्चूर्णं रजःक्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता॥' (शा. म. खं. अ. ६।१) अर्थात् सर्वथा सूखे हुए द्रव्य को अच्छी तरह पीसकर कपड़े से छान लें। इसको चूर्ण, रज, और क्षोद कहते हैं। इसकी मात्रा एक कर्ष तक की होती है। इसी प्रकार का एक मत और ग्रन्थान्तर में मिलता है—'अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। चूर्णं तच्च रजः-क्षोदस्तस्य पर्याय उच्यते॥' अर्थात् जो द्रव्य बिलकुल सूखा हो, उसे कूट-पीस कर एक महीन कपड़े में छान लेने से 'चूर्ण' प्राप्त होता है। रजः और क्षोद उसके पर्यायवाची शब्द हैं। अष्टांगसंग्रह में भी चूर्ण के विषय में निम्नलिखित वचन प्राप्त होता है—'शुष्कपिष्टः सूक्ष्मतान्तवपटच्युतश्चूर्णः। तस्य समस्तद्रव्यापरित्यागादाप्लुतोपयोगाच्च कल्काद्भेदः॥' (अं. सं. क. अ. ८) अर्थात् अत्यन्त सूखे हुए द्रव्य को शिला पर अथवा इमामदस्ते (मुसल, उदूखल) में डालकर भली प्रकार महीन कूट-पीस कर पतले तथा स्वच्छ वस्त्र से छान ले। इसको चूर्ण कहते हैं। रज और क्षोद ये चूर्ण के पर्याय हैं। चूर्ण बनाने में भी कल्क के समान कोई अंश नहीं छोड़ा जाता और चूर्ण को द्रव पदार्थ में मिलाकर सेवन किया जाता है, इसीलिये चूर्ण को कल्क का ही भेद माना जाता है।

यूनानी वैद्यक में चूर्ण के लिए 'सफूफ' जो कि अरबी भाषा का शब्द है, प्रयुक्त होता है। वैसे तो यूनानी वैद्यक में उपयोग-भेद से चूर्ण (सफूफ) की अलग संज्ञायें (पर्याय) प्रयुक्त की गई हैं, यथा—मञ्जन के लिये सनून, व्रण पर छिड़कने के लिए प्रयुक्त होने वाले अवधूलन चूर्ण (Dusting Powder) के लिये ज़रूर, नाक से सुंघनी (नस्य) के रूप में सूँघने के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले चूर्ण के लिये नफूख़ तथा अतूस (छींक लाने के लिये प्रयुक्त होने वाला चूर्ण), तथा नेत्र में अञ्जन के रूप में प्रयुक्त होने वाले अत्यन्त सूक्ष्म पिष्टचूर्ण के लिये 'कुहल सुरमह'।

उपर्युक्त मतों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि शुष्क औषध-द्रव्य को स्वच्छ करके कूटकर अथवा पीसकर चूर्ण बनाया जाता है। किन्तु इस कल्प में विशेष स्थायित्व नहीं होता अर्थात् ये चूर्ण अधिक देर तक टिक नहीं सकते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्योंकि इनका सक्रिय भाग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। एलोपेथी अर्थात् पाश्चात्य-चिकित्सा-प्रणाली में चूर्ण के लिये पल्वर, पल्वराटा या पाउडर (Pulvers, Pulverata or Powders) शब्दों का व्यवहार होता है। इसके विषय में घोषकृत 'मेटीरिया मेडिका' में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है— 'Pulverata, Powders of crude drugs intended for internal use. They are single vegetable drugs reduced to a fine powder, assayed and adjusted to contain a defenite percentage of active ingredients by addition of lactose, the object being to maintain a uniform percentage of active principles. They are six in number ie. (1) Pulv. Belladonna, (2) Pulv. Digitalis, (3) Pulv. Ipecac. (4) Pulv. Jalapa, (5) Pulv. Nux Vomica and (6) Pulv. Opium.' (Pharmacology, Materia medica and Therapeutics by B. N. Ghosh. 17 th edition. P. P. 28.) अर्थात् चूर्णौषधि—यह अकेले औषध-द्रव्य का चूर्ण होता है जो आभ्यन्तरिक प्रयोग के लिये प्रयुक्त होता है। औषधि के सक्रिय अंश (वीर्यांश) को निश्चित मात्रा में रखने के लिये इस चूर्ण में दुग्धशर्करा (लैक्टोज.) चूर्ण मिलाकर मात्रा ठीक कर दी जाती है। ये संख्या में ६ होते हैं यथा (१) बैलाडोना-चूर्ण, (२) डिजिटेलिस-चूर्ण, (३) इपीकाक-चूर्ण, (४) जलापा-चूर्ण, (५) नक्स-वामिका-चूर्ण तथा (६) ओपियम-चूर्ण।

इसके अतिरिक्त एलोपैथी में पल्वर या पाउडर (Pulvers and Powders) नामक शब्दों का प्रयोग चूर्ण-योगों के लिये किया जाता है जैसा कि घोष महोदय के मेटीरिया मेडिका में दिये गये वर्णन से स्पष्ट हो जाता है, यथा–'Pulvers—Powders are mixtures of dry substances reduced to a fine powder and intimately mixed togather. Powder sould be mixed in a very clean mortar (a glass one being the best.) The method of mixing greatly affects the miscibility of powders. The B. P. Powders are eight in number, ie (1) Pulv. Cretae Aromaticus,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(2) Pulv. Cretae Aromaticus cum opio, (3) Pulv. Effervescens Co, (4) Pulv. Glycyrrhizae Co, (5) Pulv. Ipecac et opii, (6) Pulv. Jalap Co, (7) Pulv. Rhei Co. and (8) Pulv. Tragacanthae Co.' (Pharmacology, Mat. Med. and Therapeutics. by B. N. Ghosh. 17th. ed. P. P. 28). अर्थात् पल्वर, पाउडर या चूर्णयोग उसको कहते हैं जो कई शुष्क औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को आपस में सम्यक् रूप से मिलाकर बनाया जाता है। इसके लिये यथासम्भव शीशे का खरल प्रयुक्त करना चाहिये। ब्रिटिश फार्मोकोपिया में इनकी संख्या आठ मानी गई है, यथा (१) चूर्णयोग क्रीटा एरोमेटिकस, (२) चूर्णयोग क्रीटा एरोमेटिकस कम्र् ओपियो, (३) चूर्णयोग ईफरवैसेन्स कम्पाउण्ड, (४) चूर्णयोग ग्लिसराइजा कम्पाउण्ड, (५) चूर्णयोग इपीकाक एट ओपियाई, (६) चूर्णयोग जलापा कम्पाउण्ड, (७) चूर्णयोग रिहाई कम्पाउण्ड तथा (८) चूर्णयोग ट्रेगाकैन्थ कम्पाउण्ड।

इस प्रकार प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों चिकित्साप्रणालियों में चूर्णनामक कल्पना भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी किन्तु पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली में अब चूर्णों अथवा चूर्णयोगों का चलन दिन पर दिन कम होता जा रहा है। यद्यपि आयुर्वेदीय चिकित्साप्रणाली में इस प्रकार का कोई भी परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु यह तो निश्चित है कि आयुर्वेद में भी 'चूर्ण क्रमशः तीन या छः मास तक रखे रहने से निष्क्रिय हो जाते हैं,' यह विचारधारा चली आ रही है जो कि वास्तव में ठीक भी है क्योंकि वातावरण के परिवर्तन, वायु में स्थित किण्वजनों का प्रभाव, ओषधि पर ताप तथा नमी का प्रभाव चूर्ण अथवा चूर्णयोग के सक्रिय अंश को नष्ट कर डालते हैं अतः चूर्ण का सक्रिय तत्त्व अधिक दिनों तक चूर्ण में टिक नहीं पाता।

इस वर्णन के अतिरिक्त भी चूर्ण बनाने की क्रिया और उसके वितरण की सावधानियों के विषय का भी विशद वर्णन इस पाश्चात्य चिकित्साप्रणाली के ग्रन्थ में प्राप्त है, यथा—'Compound powders—The B. P. gives no direction as to the manner of mixing compound powders,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

consequently the dispenser is left to his own experiance and resources in compounding them. The following hints, however, will gretly help him.

(a) Powders must be thorougly mixed in a mortar or on a paper powders mixed by a spatula on paper and sifted, are more diffusible in water than those rubbed up in a mortar; but there are exceptions to this rule. Take for example the following prescription—R/- Sulpher precip grs 20, Guiac. Res. grs 10, Magnesia gr 20. Here the most miscible powder is obtained by triturating Guaiacum and Magnesia togather in a mortar, before adding Sulpher, where as if mixed on paper, it would not diffuse in water. Powders for insufflation should be loosly mixed on paper.

(b) They should be passed and repassed through a fine hair sieve as often as possible. By repeated silting and shaking in a bottle the ingredients are thoroughly incorporated and a uniformity of colour is obtained.

(c) They should be very lightly rubbed in a mortar if this process is at all adopted, otherwise they would cake.

(d) Ingredients in small quantities should first be thoroughly mixed togather and afterwards large quantities be gradually incorporated.

Powder in quantity—When a powder is ordered to be given in spoonfuls, it should be dispensed in a well corked or stoppered wide mouthed bottle.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Division of Powder—There should be no guess work in division. Each one must be weighed.

Liquids are rarely prescribed in powders; if so, white keiselguhr may be used to asborb them (gr 1 to 1 m.) (Ibid. P. P. 759-60).

उपर्युक्त गद्यांश का भावार्थ यह है कि चूर्ण अलग-अलग, एक-एक मात्रा में विभक्त करके अलग-अलग पुड़ियों में दिया जाता है अथवा इकट्ठा एक ही मात्रा में दिया जा सकता है। चूर्ण दो प्रकार के होते हैं (१) साधारण चूर्ण (Simple powder) तथा (२) मिश्र चूर्ण (Compound powder)। साधारण चूर्णों में प्रधान ओषधि एक ही रहती है किन्तु दूसरे प्रकार के (मिश्र) चूर्ण में प्रधान ओषधियाँ दो या दो से अधिक होती हैं। इसके सेवन के लिये एक पुड़िया ओषधि जीभ पर रखकर पानी की सहायता से निगल ली जाती है। बच्चों को चूर्ण खिलाने के लिए मधु, गुड़ वा अन्य मधुर पदार्थ की सहायता ली जाती है।

मिश्र चूर्णों के विषय में ब्रिटिश फार्माकोपिया में इस प्रकार का निर्देश नहीं मिलता कि उसमें मिलाई जानेवाली ओषधियों को किस प्रकार मिलाया जाय अतः यह बात उपवैद्य (Compounder or Dispenser) की इच्छा पर निर्भर रहती है तथा जैसा वह उचित समझता है वैसा ही बनाता है। परन्तु इसके अतिरिक्त इस विषय पर और भी सहायता नीचे लिखे वर्णन से ली जा सकती है—

(क) चूर्णों को भली प्रकार खरल में अथवा एक मोटे कागज पर रखकर स्वच्छ छुरी (प्रथ) से खूब मिला लेना चाहिये। खरल की अपेक्षा मोटे कागज पर मिला कर छाना हुआ चूर्ण अधिक गुणकारी होता है।

(ख) चूर्ण को बरावर बालों से बनाई गई सूक्ष्म चलनी (Fine hair sieve) में छान लेने से अत्यन्त बारीक चूर्ण प्राप्त होता है। बोतल में चूर्ण को भरते समय बोतल को खूब हिलाना चाहिये। इस क्रिया के करने से भी औषधि के भिन्न-भिन्न योग तथा उपादान आपस में भली प्रकार मिल जाते हैं।

(ग) खरल में औषधियों को हल्के हाथ से रगड़ना चाहिये क्योंकि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जोर से कूटने अथवा रगड़ने से औषध का चूर्ण भली प्रकार नहीं बन पाता वरन् टिकिया के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

(घ) यौगिक अथवा मिश्र चूर्णों में जो उपादान अल्प मात्रा में हों उनको पहले आपस में मिलाकर फिर अधिक मात्रावाले उपादानों (औषध-द्रव्यों) से मिलाना चाहिये।

यदि किसी चूर्ण का प्रयोग चम्मच की सहायता से करना है तो उसे चौड़े मुखवाली शीशी में रखकर भली प्रकार फिट होनेवाला कार्क या डाट लगाकर रोगी को देना चाहिये।

चूर्णों की मात्रा के विभाजन में केवल अनुमान से ही काम नहीं लेना चाहिये वरन् प्रत्येक को तौलकर निश्चित रूप तथा परिमाण में मिलाना चाहिये। द्रव औषधियों का प्रायः चूर्णों के साथ योग नहीं बनाया जाता। यदि ऐसा हुआ हो तो उसके शोषण के लिये सफेद कीसलगर चूर्ण (एक बूँद द्रव औषध के लिये १ ग्रेन कीसलगर चूर्ण) का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रयोगसंख्या ५

हिंग्वष्टक चूर्ण बनाना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
१–हिंगु (शुद्ध)	६ माशा	१. सोंठ	६ माशा	१–स्वच्छ महीन वस्त्र
		२. काली मिर्च	,, ,,	२–कटोरी
		३. पिप्पली	,, ,,	३–इमामदस्ता
		४. अजवाइन	,, ,,	४–तराजू
		५. श्वेत जीरा	,, ,,	
		६. कृष्ण जीरक	,, ,,	
		७. सैंन्धव लवण	,, ,,	

विधि—सहायक द्रव्यों (सोंठ, व्योष, पिप्पली आदि) को इमामदस्ते में डालकर कूट-पीस लिया और अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण हो जाने पर छान लिया। फिर इस छने हुए चूर्ण को महीन पिसी हुई हींग में मिला दिया।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परिणाम—इस प्रकार हिंग्वष्टक चूर्ण प्राप्त हुआ।

मान—तीन तोला हिंग्वष्टक चूर्ण प्राप्त हुआ।

सावधानियाँ—(१) औषधद्रव्य कूटते समय स्वच्छता का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये।

(२) चूर्ण में यथासम्भव धूल, कंकड़, मिट्टी, पानी आदि न पड़ने पावें।

(३) प्रत्येक द्रव्य को अलग-अलग महीन कूटकर, छानकर पुनः अवशिष्ट मोटे चूर्ण को कूटकर छान लेना चाहिये।

(४) यदि सम्भव हो तो चूर्ण की खुज्जी (सीठी) को फिर एक आध बार कूटकर छान लेना चाहिये।

(५) शुद्ध हिंगु को गाय के घी में घोटकर महीन कर लेना चाहिये।

(६) सभी द्रव्यों के कपड़छन चूर्ण को अन्त में हिंगु से मिलाना चाहिये। अन्यथा हिंगु का परिमाण चूर्ण में सम न होकर कम हो जायगा जिसके फलस्वरूप चूर्ण के गुणों में न्यूनता आ जायगी।

(७) सभी द्रव्यों को एक साथ कूटने की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य को अलग-अलग कूटकर छानने में सुविधा रहती है। अतः जहाँ तक हो सके प्रत्येक द्रव्य को अलग-अलग ही कूटकर व भली प्रकार छानकर फिर एक दूसरे के चूर्ण में मिला देना चाहिये।

प्रयोगसंख्या ६

सितोपलादि चूर्ण तैयार करना

द्रव्य नाम	मान	सहयोगी द्रव्य	मान	उपकरण
१. सिता (मिश्री)	१ तो०	१. वंशलोचन	६ माशा	१. इमामदस्ता
		२. पिप्पली	३ माशा	२. कटोरी
		३. छोटी इलायची	१½ माशा ६ रत्ती	३. महीन स्वच्छ वस्त्र
		४. दालचीनी		

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विधि—सर्वप्रथम सभी सहायक द्रव्यों (वंशलोचन, पिप्पली, छोटी इलायची तथा दालचीनी) को इमामदस्ते में डालकर (अलग-अलग अथवा एक साथ भी) भली प्रकार कूटकर महीन कपड़े की सहायता से एक कटोरी में कपड़छन चूर्ण निकाल लिया और पुनः उन सहायक द्रव्यों के स्थूल चूर्ण को इमामदस्ते में डालकर कूटा व चूर्ण बनाया और उसी कटोरी में महीन कपड़े से छान लिया। (यदि सहायक द्रव्यों को अलग-अलग कूटा हो तो सबका कपड़छन चूर्ण अलग-अलग पात्रों में रखना चाहिये और सबके भली प्रकार चूर्णित हो जाने पर एक में मिला देना चाहिये।) फिर इस चूर्ण को महीन पीसे हुए सिता (मिश्री) के चूर्ण में मिला दिया। ऐसा करने से सितोपलादि चूर्ण बनकर तैयार हो गया।

मान—१ तोला ७ माशा चूर्ण बनकर तैयार हुआ।

सावधानियाँ—वे ही सब सावधानियाँ बरतनी चाहियें जो प्रयोग नं० ५ में चूर्ण बनाने के प्रसंग में कही गई हैं।

गुण—यह सितोपलादि चूर्ण मधु और गोघृत मिलाकर सेवन करने से कास, श्वास और क्षय को दूर करता है तथा हाथ-पैरों की जलन, मन्दाग्नि, जीभ की शून्यता (रसज्ञानहीनता), पसलियों की पीड़ा, अरुचि, ज्वर तथा ऊर्ध्वग रक्तपित्त को दूर करता है।

चूर्ण की मात्रा—चूर्ण की मात्रा के विषय में शार्ङ्गधरकार ऊपर ही बता चुके हैं कि 'तन्मात्रा कर्षसंमिता' अर्थात् चूर्ण की मात्रा १ कर्ष तक की होती है किन्तु यह मात्रा भी मृदुवीर्यवाली औषधि के लिये है। यदि औषधद्रव्य मध्यवीर्यवाला हो तो उसके चूर्ण की मात्रा आधा कर्ष और यदि औषध तीक्ष्ण-वीर्य हो तो उसके चूर्ण की मात्रा चौथाई कर्ष ($\frac{1}{4}$ तोला) होनी चाहिये।

चूर्ण में भावना देने की विधि—चूर्ण में यदि स्वरस की भावना देनी हो तो शार्ङ्गधरसंहिता में दिये गये मत के अनुसार—'द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्। भावनायाः प्रमाणं तच्चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः॥' (शार्ङ्ग. सं. म. ख. अ. ६।६)—चूर्ण में द्रव पदार्थ (नींबू आदि का रस) उतना ही देना चाहिये जितने में कुल चूर्ण अच्छी तरह डूब जाय। भावना के

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हेतु यही प्रमाण अच्छे वैद्यों ने कहा है। इसी प्रकार ग्रन्थान्तर में भी भावनाविधि पर निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है—'दिवा दिवाऽऽतपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत्। शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं यथोक्त भावनाविधिः॥ भावनायां द्रवो देयः सम्यगार्द्रत्वकारकः॥' कहने का तात्पर्य यह है कि चूर्ण में स्वरस की भावना देने के लिये इतने स्वरस का प्रयोग करना चाहिये कि चूर्ण भली प्रकार 'तर' हो जावे। औषध की गुणवृद्धि के लिये उसके चूर्ण को उसी औषध के स्वरस की भावना दी जानी चाहिये।

चूर्ण में प्रक्षेप द्रव्य का प्रमाण—शार्ङ्गधरसंहिता में इस विषय पर निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है—'चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्। चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद् भवेद्॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः॥ (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. ६, २–३) अर्थात् चूर्ण में गुड़ बराबर मात्रा में तथा शक्कर (चीनी) दुगुनी मात्रा में डालनी चाहिये। चूर्णों में हींग भूनकर डालनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह उत्क्लेदकारक नहीं होती। चूर्ण को घृत, मधु, तैल आदि द्रव पदार्थ दुगुनी मात्रा में मिलाकर चाटना चाहिये, और जल, दूध आदि द्रव चतुर्गुण (चौगुनी) मात्रा में मिलाकर व घोलकर पीना चाहिए। ठीक इसी प्रकार का भाव एक अन्य ग्रन्थ के वर्णन से प्राप्त होता है—'चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता। लिह्याच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः॥' अर्थात् चूर्ण में गुड़ या मिश्री का प्रक्षेप डालने का निर्देश हो किन्तु उसका प्रमाण न लिखा हो तो गुड़ बराबर प्रमाण में तथा मिश्री दूनी मात्रा में डाले। इसी प्रकार घी, मधु या तैल, चूर्ण से द्विगुण प्रमाण में मिलाकर चटावे और चूर्ण को जल, दुग्ध आदि चतुर्गुण (चौगुने) द्रव पदार्थ में मिलाकर पानार्थ प्रयोग में लावे।

चूर्ण आदि के अनुपान की मात्रा—कभी-कभी चूर्ण का सेवन अनुपान के साथ कराया जाता है। इसके लिए अनुपान कितनी मात्रा में लेना चाहिए इस विषय पर विचार करना एक विद्वान् चिकित्सक के लिए विचार की वस्तु हो जाती है। अतः ऐसे अवसर पर निम्नलिखित वर्णन से सहायता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

लेनी चाहिए—चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् । वातपित्तकफातङ्के त्रिद्व्येकपलमाहरेत् ।। यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति । अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ।।' (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. ६, ४-५) अर्थात् चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्क का अनुपान वात, पित्त और कफ के विकार में क्रमशः तीन पल, दो पल और एक पल लेना चाहिये। जिस प्रकार जल में तेल डालने से क्षणमात्र में वह सर्वत्र फैल जाता है, उसी प्रकार अनुपान के बल से औषधि अङ्ग में फैल जाती है।

चूर्णों के कुछ प्रसिद्ध योग, उनके गुण तथा प्रयोग—

(१) पिप्पली चूर्ण—'मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत्कासज्वरापहम् । हिक्काश्वासहरं कण्ठ्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम् ।।' अर्थात् पिप्पली का चूर्ण मधु मिलाकर चाटने से खांसी, ज्वर, हिचकी, श्वास और तिल्ली (बरवट) को नष्ट करता है तथा कण्ठ के लिये हितकारी और बालकों के लिये विशेष रूप से लाभकारी होता है।

(२) सुदर्शन चूर्ण—त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शठी । त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः । कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च बालकम् । निम्बं पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् । यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा । वचा त्वक्पद्मकोशीरं चन्दनाऽतिविषाबलाः ।। शालिपर्णी पृष्ठपर्णी विडङ्गं तगरं तथा । चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् । जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशलोचना । पुण्डरीकं च काकोलीपत्रकं जातिपत्रकम् ।। तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् । सर्वचूर्णस्य चार्धांशं कैरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ।। एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् । ज्वरांश्च निखिलान् हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ।। शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वज्वरनिवृत्तये । सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् । तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं विनाशनम् ।।

अर्थात् हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारूहल्दी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, कचूर, सोंठ, मरिच, पीपल, पीपलामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा, नेत्रबाला, नीम की छाल, पुष्करमूल, मुलैठी, कुटज की छाल, अजवाइन, इन्द्रयव, भारङ्गी, सहिजन के बीज, फिटकरी, वच, दालचीनी,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पद्माख, खस, लाल चन्दन, अतीस, खरेंटी, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, बिडङ्ग, तगर, चित्रक की जड़, देवदारु, चव्य, परवल के पत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, सफेद कमल, काकोली, तेजपत्ता, जावित्री और तालीसपत्र इन औषधियों को समभाग लेकर चूर्ण बना लें और फिर सम्पूर्ण चूर्ण का आधा भाग चिरायते का चूर्ण लेकर सबको एक में मिला देवें। यह सुदर्शन नाम का चूर्ण त्रिदोष को दूर करता है और सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। यह चूर्ण वातज, पित्तज, कफज, द्वंद्वज, आगन्तुज, धातुगत तथा विषमज्वरों को और सन्निपातज्वर, मानसज्वर, शीतज्वर, एकाहिक आदि ज्वरों को नष्ट करता है। मोह, तन्द्रा, भ्रम (चक्कर), प्यास, श्वास, कास, पाण्डुरोग, हृदयरोग और कामला को नष्ट करता है। त्रिक, पीठ, कमर और घुटनों की पीड़ा तथा पार्श्वशूल को शान्त करता है। इस चूर्ण को ठण्डे जल के साथ सब प्रकार के ज्वरों की निवृत्ति के लिये सेवन करना चाहिये। जैसे सुदर्शन चक्र दानवों का विनाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब प्रकार के ज्वरों का नाश करता है।

(३) शृङ्ग्यादिचूर्ण—'शृङ्गीं प्रतिविषां कृष्णां चूर्णितां मधुना लिहेत्। शिशोः कासज्वरच्छर्दिशान्त्यै वा केवलां विषाम्॥' अर्थात् काकड़ासिंगी, अतीस और पीपल का चूर्ण मधु के साथ चटाने से बालक की खाँसी, ज्वर और छर्दि शान्त हो जाती है। अथवा केवल अतीस का चूर्ण (अल्पमात्रा में) मधु के साथ चटाने से भी उपर्युक्त लाभ होता है।

(४) दाडिमाष्टकचूर्ण—'दाडिमी द्विपला ग्राह्या खण्डाच्चाष्टपलानि च। त्रिगन्धस्य पलं चैकं त्रिकटु स्यात्पलत्रयम्॥ एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद्दाडिमाष्टकम्। रुचिकृद्दीपनं कण्ठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम्॥' अर्थात् अनारदाना दो पल, मिश्री आठ पल, त्रिगन्ध (दालचीनी, इलायची के दाने और तेजपात) एक पल, त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च और पीपल) ३ पल, इन सबको एकत्र कर चूर्ण बनाया जावे। यह दाड़िमाष्टक चूर्ण है जो रुचिकारक, दीपन, कण्ठ के लिये हितकारी तथा कास और ज्वरनाशक है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(५) पञ्चसमचूर्ण—'शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा। समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। ज्ञेयं पञ्चसमं चूर्णमेतच्छूल-हरं परम्। आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं परम्॥' अर्थात् सोंठ, हरड़, पीपल, निशोथ और सोंचर नमक इनको समभाग में लेकर महीन चूर्ण बनाया जाय। यह पञ्चसमचूर्ण शूल को नष्ट करने में परम उपयोगी है एवं आध्मान, उदर-विकार, बवासीर और आमवात को नष्ट करता है।

(६) तालीसादिचूर्ण—'तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोच-नम्। एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत्॥ एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत्। द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः। ताली-साद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम्॥ कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाश-नम्। शोषाध्मानहरं प्लीहाग्रहणीपाण्डुरोगजित्। पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत् स्याद् गुटिका ततः॥' अर्थात् तालीसपत्र १ कर्ष, काली मिर्च २ कर्ष, सोंठ ३ कर्ष, पीपल ४ कर्ष, वंशलोचन ५ कर्ष, छोटी इलायची के दाने और दालचीनी आधा-आधा कर्ष, सबका चूर्ण बनाकर ३२ कर्ष शर्करा या मिश्री मिलाई जावे। यह तालीसादिचूर्ण है जो रोचन तथा पाचन होता है तथा कास, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, आध्मान, प्लीहा, ग्रहणी और पाण्डुरोग को नष्ट करता है। शक्कर अथवा मिश्री की चासनी में इस चूर्ण को मिलाकर गोली भी बनाई जा सकती है जो कि चूर्ण से बहुत हल्की मानी गई है।

(७) लवणभास्करचूर्ण—'सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः। पञ्च सौवर्चलं ग्राह्यं बिडं सैन्धवधान्यके। पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजी-रकपत्रकम्। नागकेशरतालीसमम्लुवेतसकं तथा॥ द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः। मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम्। दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेले चार्धकार्षिके। एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभि-धम्॥ (बीजपूररसेनैव भावितं सप्तवारकम्) शाणप्रमाणं देयं तु मस्तु-तक्रसुरासवैः। वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम्। अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम्॥ शोफं शूलं श्वासकासमामवातं च हृद्रुजम्।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मन्दाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम्। सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा॥' अर्थात् सामुद्र नमक ८ कर्ष, सौंचर नमक ५ कर्ष, बिड नमक, सेंधा नमक, धनियाँ, पीपल, पीपलामूल, कालाजीरा, पत्रज (तेजपात), नागकेशर, तालीसपत्र, अम्लवेत प्रत्येक दो-दो कर्ष, काली मिर्च, जीरा और सोंठ प्रत्येक एक-एक कर्ष, अनारदाना ४ कर्ष, दालचीनी और इलायची आधा-आधा कर्ष। इन सबको महीन कूटकर चूर्ण किया जावे और उसमें बिजौरा नीबू के रस की सात भावनाएँ दी जावें। इस चूर्ण को शाणप्रमाण (लगभग चार माशे की) मात्रा में दही के तोड़, तक्र (मट्ठा), मदिरा और आसवों के साथ देना चाहिये। यह लवणभास्करचूर्ण वात और कफजन्य गुल्म, प्लीहा, उदरविकार, क्षय, अर्श (बवासीर), ग्रहणी, कुष्ठ, बद्धकोष्ठता, भगन्दर, शोथ, शूल, कास, श्वास, आमवात, हृद्रोग और मन्दाग्नि को नष्ट करता है तथा उत्तम दीपन-पाचन औषध है। इस चूर्ण को सब लोगों के कल्याण के लिये सर्वप्रथम श्री भास्कराचार्य ने कहा था।

(८) नवायसलौह—'चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं त्र्यूषणानि च। समभागानि सर्वाणि नवभागा हतायसः॥ एतदेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत्। गोमूत्रमथवा तक्रमनुपाने प्रशस्यते। पाण्डुरोगं जयत्युग्रं त्रिदोषं च भगन्दरम्। शोथकुष्ठोदरार्शांसि मन्दाग्निमरुचिं कृमीन्॥' अर्थात् चीता की जड़, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, विडंग, सोंठ, काली मिर्च और पीपल ये सब औषधियाँ समभाग लेकर चूर्ण बनाया जावे और नौ भाग (अर्थात् पूरे चूर्ण के बराबर) लौहभस्म लिया जावे। सबको मिलाकर एक कर लिया जाय। तब इस चूर्ण को मधु और घृत के साथ चाटना चाहिये और उसके बाद गोमूत्र अथवा तक्र (मट्ठा) पीना चाहिये। इसके सेवन से पाण्डुरोग, त्रिदोष, भगन्दर, शोथ, कुष्ठ, उदर-विकार, अर्श, मन्दाग्नि, अरुचि और कृमिरोग नष्ट होते हैं।

(९) एलादिचूर्ण—'एलाप्रियङ्गुमुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली। श्रीचन्दनं तथा लाजा लवङ्गं नागकेशरम्। एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सिताक्षौद्रयुतं लिहेत्। वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिं हन्त्यतिवेगतः॥' अर्थात् इला-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यची के बीज, प्रियङ्गु के फूल, नागरमोथा, बेर की मींगी, पीपल, सफेद चन्दन, धान की खील (लावा), लौंग और नागकेशर इन सबका चूर्ण बनाकर मिश्री और मधु के साथ चाटने से वात, पित्त और कफजन्य छर्दि (वमन) शीघ्र ही शान्त होती है।

(१०) अजमोदादिचूर्ण—'अजमोदा मोचरसं सशृङ्गवेरं सधातकीकुसुमम् । गोदधिमथितयुतं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥' अर्थात् अजमोद, मोचरस, सोंठ और धाय के फूल, इनका चूर्ण मथे हुये गोतक्र (मट्ठे) के साथ पीने से गङ्गा के वेगवाली प्रवाहिका भी रुक जाती है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्काथकषायादिकल्पनाध्याय

शृत (क्काथ) कषाय-कल्पना

क्काथ की परिभाषा बतलाते हुये चरककार ने लिखा है—'वह्नौ तु क्वथितं द्रव्यं शृतमाहुश्चिकित्सका: ।।' (च० सू० अ० ४) अर्थात् अग्नि की सहायता से क्वथित (उबाला हुआ) द्रव्य क्काथ या शृत कहा जाता है। सुश्रुतकार ने भी क्काथ के विषय में निम्नलिखित मत का प्रदर्शन किया है—'तत्रान्यतमपरिमाणसंमितानां यथायोगं त्वक्पत्रमूलादीनामातपपरिशोषितानां छेद्यानि खण्डशश्छेदयित्वा, भेद्यान्यणुशो भेदयित्वाऽवकुट्य, अष्टगुणेन, षोडशगुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्य, स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं क्काथयित्वाऽपहरेदित्येष कषायकल्पः, अथवोदकद्विद्रोणे त्वक्पत्रफलमूलादीनां तुलामावाप्य चतुर्भागावशिष्टं निष्क्काथ्यापहरेदित्येष कषायकल्पः ।।' (सु० चि० अ० ३१) इसी प्रकार के मत का प्रतिपादन अष्टाङ्गसंग्रहकार भी करते हैं, यथा—'क्काथो निर्यूहः। तत्र भेद्यान्यणुशो भेदयित्वा, छेद्यानि छेदयित्वा, प्रक्षाल्योदकेन, अधःप्रलिप्तायां ताम्रायोमृन्मयान्यतमायां स्थाल्यां समावाप्य, बह्वल्पपानीयग्राहितामौषधानामाकलय्य यावता मुक्तरसता स्यात्तावदुदकमासेचयेच्छोषयेच्च। अथाग्नावधिश्रित्य महत्यासने सुखोपविष्टः सर्वतः सततमवलोकयन् दर्व्याऽवघट्टयन् मृदुना परितः समुपगच्छताऽनलेन साधयेत्। अवतार्य च परिस्रुतं यथार्हस्पर्शं प्रयुञ्जीत। मृदौ चतुर्गुणं देयं मध्यमेऽष्टगुणं तथा। द्रव्ये तु कठिने देयं बुधैः षोडशिकं जलम् ।। कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं जलम्। तदूर्ध्वं कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्। तदूर्ध्वं प्रक्षिपेन्नीरंखारीं यावच्चतुर्गुणम् ।।' (अ० सं० क० अ० ८) अर्थात् द्रव्य यदि आर्द्र (गीले तथा ताजे) हों तो—उनको पानी से धोकर और यदि शुष्क हों तो वैसे ही लेकर, उनके छोटे छोटे टुकड़े करके, ऊखल या इमामदस्ते में कूटकर, फिर नीचे तल में मिट्टी का लेप किये हुये कलईदार तांबे (ताम्रनिर्मित) के अथवा भीतर से चिकने लोहे (स्टील अथवा स्टेनलेस स्टील, Stainless steel) के या मिट्टी के बर्तन में डालकर तथा अनुमान करके

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

कि ये औषधद्रव्य कितना जल सोखेंगे और कितने पानी में इनका वीर्यांश (सारभाग) क्वाथ में उतर आवेगा आदि का भी विचार करके उसके अनुकूल ही उसमें पाँचगुना, आठगुना अथवा सोलहगुना जल छोड़कर अंगीठी पर चढ़ाकर मन्द मन्द आँच में पकावें। पकाते समय उस पात्रस्थित जल को कलछे से धीरे-धीरे चलाते रहें तथा इस बात का भी पूर्णरूप से ध्यान रखें कि पात्र में चारों तरफ से एक समान आँच लगती है या नहीं। इसके बाद जब यह ज्ञात हो कि उस औषधद्रव्य का वीर्यांश (सारभाग) जल में उतर आया है तथा औषधद्रव्य नीरस प्रतीत होता हो अथवा और अधिक सार निकलने की आशा न रही हो तब पात्र को अँगीठी पर से नीचे उतारकर, तथा जल के सुखोष्ण (गुनगुना, या हाथ से छू सकने योग्य अथवा सहता हुआ गरम) होने पर धोये हुए, स्वच्छ, मजबूत वस्त्रखण्ड की सहायता से औषधद्रव्य का सम्पूर्ण रस हाथ से दवाकर निकाल लें तथा जल (क्वाथ) को छान लें। यही सारयुक्त क्वथित जल क्वाथ, शृत और निर्यूह कहा जाता है। साधारणतः मृदु स्वभाववाले द्रव्य में चारगुना जल डालना चाहिये तथा मध्यम स्वभाववाले द्रव्य में आठगुना जल छोड़कर चौथाई शेष रह जाने पर तथा कठिन द्रव्य में सोलहगुना जल छोड़कर अष्टमांश जल शेष रहने पर क्वाथ को आँच पर से उतार लेना चाहिये। यदि औषधद्रव्यों में मृदु, मध्य और कठिन तीनों प्रकार के द्रव्य मिले हुये हों तो आठगुना जल छोड़कर चौथाई शेष रह जाने पर क्वाथ सिद्ध हुआ जानकर आँच पर से उतार लेना चाहिये। इसी प्रकार द्रव्य के प्रमाण के हिसाब से ४ तोले तक द्रव्य होने पर सोलहगुना, पाँच से सोलह तोले तक द्रव्य होने पर आठगुना तथा द्रव्य के सोलह तोले की मात्रा से अधिक होने पर चारगुना जल डालना या मिलाना चाहिये। यदि किसी कारणवश उपर्युक्त आदेश के अनुसार द्रव्य के प्रमाण के हिसाब से थोड़े द्रव्य में प्रमाण से कमजल डाल दिया जाय तो जल शीघ्र जल जाता है जिसके फलस्वरूप औषधद्रव्य का सारभाग (वीर्यांश) क्वाथ में भली प्रकार नहीं आने पाता और क्वाथ के गुणों में न्यूनता आ जाती है। अतः जहाँ तक हो सके ऊपर बताये गये शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार ही क्वाथ सिद्ध करना चाहिये।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शार्ङ्गधरसंहिता में भी क्वाथनिर्माण के विषय में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है—'पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत्। मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्। तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्॥ शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते॥' (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. २।१-२) अर्थात् एक पल परिमित कूटे हुये क्वाथ्य द्रव्य में सोलहगुना जल मिलाकर मिट्टी के बरतन में मन्द-मन्द आँच पर पकावे। फिर अष्टमांश ($\frac{1}{8}$ भाग अर्थात् दो पल) शेष रहने पर आँच पर से उतार कर छान लेवे और कुछ गुनगुना रहते-रहते ही रोगशमनार्थं पिलावे। यह शृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्वाथनिर्माण के हेतु प्राचीन आचार्यों ने मृदु, कठिन और कठिनतर द्रव्यों के विचार से परिभाषाओं में क्वाथ्य द्रव्य के अनुसार जल की मात्रा का विशेष निर्देश किया है। यथा—'चतुर्गुणं मृदौ द्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं तथा। अत्यर्थकठिने देयं बुधैः षोडशिकं जलम्॥' इस परिभाषा के विषय में कुछ टीकाकारों का मत है कि 'इस परिभाषा का प्रचार स्नेहसाधनविषयक क्वाथ में ही प्रायः किया जाता है। परन्तु परिभाषासंग्रह के उल्लेखक्रम के सिवा कोई प्रमाण नहीं जिससे यह माना जा सके कि पेय क्वाथ में इसका उपयोग नहीं होता। चक्रपाणिदत्त भी चरकसंहिता के 'पाक्यं शीतकषायं वा मुस्तपर्पटके पिबेत्।' आदि श्लोकों की व्याख्या करते हुये अपना मत प्रकट करते हैं कि 'मृदु द्रव्य में चतुर्गुण, कठिन द्रव्य में अष्टगुण और अतिकठिन द्रव्य में सोलहगुना जल देकर चतुर्थांश शेष रहने पर द्रव्यरस की ठीक-ठीक प्राप्ति होती है। परन्तु अल्प द्रव्य में थोड़ा ही पानी देने से (आँच पर उस जल के जल्दी से जल जाने के कारण) क्वाथ में आवश्यक मात्रा में द्रव्यरस उतरकर नहीं आ सकता, अतः एक कर्ष से एक पल तक मृदु द्रव्य में भी सोलहगुना ही पानी मिलाना चाहिये। इसी तात्पर्य को निम्नलिखित परिभाषाओं से भी समझा जा सकता है—'कर्षादौ तु पलं यावद् दद्यात् षोडशिकं जलम्। ततस्तु कुडवं यावत्तोय-मष्टगुणं भवेत्। क्वाथ्यद्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशेषितम्॥' (चक्रदत्त-संहिता) तथा—'द्रव्यमापोत्थितं कृत्वा कर्षादिकपलान्ततः। जले षोड-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शिके पक्त्वा क्वाथः स्यात् पादशेषितः ॥' (गंगाधरपरिभाषा) इसके अतिरिक्त—'क्वाथ्यद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते । चतुर्भागावशिष्टं च पेयं पलचतुष्टयम् ॥' इस प्रकार ये उपर्युक्त परिभाषायें केवल इस भेद की ओर संकेत करती हैं कि शार्ङ्गधरसंहिताकार जल को अष्टमांश शेष रहने पर उतारने के लिये कहते हैं जब कि इन परिभाषाओं में जल को चतुर्थांशावशेष रखने का संकेत मिलता है। इस भेद का कारण यह भी हो सकता है कि परिभाषायें क्वाथ का हल्का पाक करने का उद्देश्य रखती हों जब कि शार्ङ्गधर के मत से क्वाथ में औषधद्रव्य का पूर्णरूपेण पाक होना चाहिये। अथवा यह भी समझा जा सकता है कि चतुर्थांश (४ पल तक) जल शेष रखने का उपदेश बलशाली, तथा अष्टमांश शेष रखने का उपदेश अल्पबलवाले तथा अल्पकाय रोगियों के लिये हो जैसा कि आचार्य स्वयं कहते हैं—'दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम् । अन्ये त्वर्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः ।' क्योंकि अधिक मात्रा में क्वाथ शेष रखने से महाकाय रोगी तो उसे पी सकते हैं परन्तु अल्पकाय रोगी उसको नहीं पी सकते, अतएव कुछ अनुभवी वैद्यों का मत यह है कि क्वाथ अधिक शेष नहीं रखना चाहिये, यथा—'क्वाथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशेषितम् । पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ।'

फिर भी पलद्वय की मात्रा आजकल के रोगियों के लिये विशेष होती है क्योंकि कलियुग में मनुष्यों की आयु, सत्त्व, ओज, जीवनशक्ति आदि घटकर बहुत कम हो जाती हैं; फिर भारतवर्ष के निवासियों की तो बात ही न पूछिये जहाँ पर निर्धनता, बेकारी तथा विविध प्रकार की संक्रमणशील व्याधियाँ निःसङ्कोच भ्रमण करती हैं। अतः ऐसी अवस्था में एक कर्ष क्वाथ्य द्रव्य में सोलहगुना जल अथवा क्वाथ का मध्यपाक करना उचित हो तो आठगुना जल देकर चतुर्थांश शेष रखा हुआ क्वाथ ही प्रयोग में लाना चाहिये। मध्यपाक के लिये भी प्राचीन आचार्यों ने उपदेश दिया है कि—'द्रव्याणां मध्यपाकार्थं यत्र मात्रा न दर्शिता । पादांशादौषधात्तत्र जलं दद्यात् चतुर्गुणम् । चतुर्भागावशिष्टं च कषायं कारयेद्भिषक् ॥' तथा 'मृद्वादौ द्रव्यसंघाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः । मध्यस्योभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलम् ॥'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एक अन्य ग्रन्थकार ने भी क्वाथ का परिचय निम्नलिखित शब्दों में दिया है—'द्रव्यादापोत्थितात्तोये वह्निना परिपाचितात्। निःसृतो यो रसः पूतः स श्रृतः समुदाहृतः। क्वाथः कषायो निर्य्यूहः पर्यायस्तस्य कीर्त्तितः॥' अर्थात कूटी हुई दवा में जल मिलाकर आग पर खौलाकर (पकाकर) व मसलकर छान लेवें। इस क्रिया से जो रस निकल आता है उसे श्रृत कहते हैं। क्वाथ, कषाय और निर्यूह इसके दूसरे नाम हैं।

पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली में क्वाथ-कल्पना 'डिकॉक्शन' (Decoction) नाम से सम्बोधित की जाती है। इसके विषय में घोषकृत मेटीरिया मेडिका में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है—'Decoction is the process of boiling in water coarsely comminuted vegitable drugs for a definite period, and differs from infusion where the drug is only soaked in either cold or boiling water.' (Pharmacology, Mat. Med. and Therapeutics by B. N. Ghosh. Ed. 17th. P. P. 7) अर्थात् डिकॉक्शन (क्वथन = उबालना) में औद्भिद औषधद्रव्यों को जवकुट करके जल में निश्चित काल पर्य्यन्त उबालकर या कुछ काल भिंगोकर छान लेते हैं। इस प्रकार जो वस्तु प्राप्त होती है उसे आयुर्वेद में क्वाथ, हिन्दी में काढ़ा, यूनानी वैद्यक में तबीख, मुग़ला, मुत्बूख़ और जोशाँदा तथा अंगरेजी में डिकॉक्शन कहते हैं।

यही नहीं, क्वाथ किस प्रकार और कैसे पात्र में बनाना चाहिये इसके विषय में भी निम्नलिखित वर्णन मिलता है—'Drugs should be coarsely powdered or sliced before they are boiled in water for five minutes or longer. If the comminution is too fine some sediment deposits. The drugs should always be put in cold water before boiling. The Decoction pots should be enamelled or tinned or silver gilded copper wire half an inch or more above the bottom should be used to prevent imparting a fusty odour to the decoction

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

from the particles of the drug adhering to the bottom of the vessel during boiling.' (Ibid P. P. 747). अर्थात् क्वाथ करने के पूर्व क्वाथ्य द्रव्य को यवकुट कर लें अथवा काष्ठवत् कड़े द्रव्यों के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। इसके लिये औषध को पहले से ही ठण्डे पानी में डाल देना चाहिये। क्वाथ-पात्र मोटे टीन का अथवा चीनी कलई किया हुआ लोहे का या कलईदार ताम्र का तथा एक विशेष आकार का होना चाहिये, जिसके अन्दर मात्रा एवं क्रमाङ्क का भी चिह्न होता है। कभी-कभी सके लिये ढक्कनदार आकार-विशेष का मुठियादार मिट्टी का बर्तन भी प्रयुक्त किया जाता है। यदि पात्र के अन्दर वास्तविक पेंदे से आधा इञ्च ऊपर कलई किये हुये या चाँदी का पानी चढ़ाये हुये तांबे के तार का जालीदार एक अतिरिक्त पेंदा भी लगा दिया जाय तो क्वाथ करते समय औषध के पेंदे में चिपकने के कारण क्वाथ के कुवासित होने की आशंका दूर हो जाती है।

प्रयोग-संख्या ७

त्रिफला का क्वाथ तैयार करना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
त्रिफला	२ कर्ष	जल	३२ कर्ष	१—अंगीठी २—मिट्टी का पात्र ३—स्वच्छ वस्त्र ४—स्वच्छ पात्र

विधि—एक मिट्टी की हाँडी में ३२ तोले जल लेकर उसमें २ तोला जवकुट किया हुआ त्रिफला-चूर्ण डाल दे। इसके बाद हाँडी को कोयलों की मन्द-मन्द आँचवाली अँगीठी पर चढ़ा दे। जब जल उड़कर अथवा जलकर लगभग चार तोले बचे तब हाँडी को नीचे उतार ले और ठण्डा होने पर उसे साफ वस्त्र से छान ले। इस प्रकार त्रिफलाक्वाथ बनकर तैयार हो जाता है।

मान—२ कर्ष त्रिफला से १६ गुने जल में ४ तोला क्वाथ प्राप्त होता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सावधानियाँ—(१) त्रिफला से गुठलियाँ और कूड़ा-कर्कट आदि निकाल देना चाहिये।

(२) हाँडी में चारों ओर से समान मात्रा में आँच लगे इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

क्वाथ की मात्रा—आचार्यों ने क्वाथ की पीने की मात्रा (मध्यम मात्रा) ४ तोले की बतलाई है—'क्वाथस्य मध्यमा मात्रा फलमात्रा प्रकीर्तिता ॥' इस विषय पर एक अन्य विद्वान् का मत है कि—'आहाररसपाके च सञ्जाते द्विपलोन्मितम्। वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत् क्वाथं सुपाचितम् ॥' अर्थात् भोजन के भली प्रकार पच जाने पर वृद्धवैद्यों के उपदेशानुसार अच्छी प्रकार से औटाए गये काढ़े को दो पल की मात्रा में पीवे। ठीक यही मत शार्ङ्गधरकार का भी है। यहाँ पर दो पल की मात्रा साधारण रूप में बताई गई है। वस्तुतः मात्रा का निर्देश दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, द्रव्य तथा कोष्ठ के विचार से करनी चाहिये, जैसा कि आचार्य ने कहा है—'मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः। व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥' अस्तु, एक पल की मात्रा उत्तम मात्रा, तीन कर्ष की मध्यम तथा दो कर्ष की हीन मात्रा किसी-किसी विद्वान् ने कही है, यथा—'उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमा। जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च ॥' इस प्रकार आधुनिक समय में मनुष्यों के बलाबल आदि को देखते हुए पहली मात्रा (मध्यम मात्रा) १ पल या ४ तोले की उचित प्रतीत होती है तथा दूसरी मात्रा शार्ङ्गधरकार की महाकाय पुरुषों के लिये उचित हो सकती है किन्तु अल्पकाय व अल्पबलवाले रोगी पुरुषों के लिए कदापि ठीक नहीं है। अतः क्वाथ की मात्रा १ पल ही ठीक कही जा सकती है, २ पल नहीं।

क्वाथ में प्रक्षेप द्रव्य का परिमाण—इस विषय पर शार्ङ्गधरसंहिताकार ने निम्नलिखित मत का प्रदर्शन किया है—'क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः। वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु। हिंगु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत्। क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद् द्रवं तथा। कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसम्मितम् ॥' (शार्ङ्ग. सं. म. ख. अ. २, ४-६) अर्थात्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

वात, पित्त अथवा कफ का विकार उत्पन्न होने पर क्वाथ में मिश्री या चीनी का प्रक्षेप यथाक्रम चतुर्थांश, अष्टमांश या षोडशांश देना चाहिये। परन्तु मधु का प्रक्षेप इसके विपरीत करना चाहिये अर्थात् वातविकार में क्वाथ की अपेक्षा सोलहवाँ भाग, पित्तविकार में आठवाँ भाग तथा कफविकार में चौथाई भाग देना चाहिये। क्वाथ में जीरा, गुग्गुलु, क्षार (यवक्षार आदि), लवण, शिलाजीत, हींग और सोंठ, मिर्च, पीपल (त्रिकटु) का प्रक्षेप शाणप्रमाण (चार माशा) देना चाहिये। दूध, घी, गुड़, तैल, गोमूत्र एवं अन्य द्रव द्रव्य तथा कल्क और चूर्ण आदि का प्रक्षेप एक कर्ष मात्रा में डालना चाहिये। वैद्यक परिभाषाप्रदीप के विद्वान् लेखक का भी मत शार्ङ्गधरकार के समान ही है।

एक अन्य ग्रन्थकार का मत है कि 'जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु। हिङ्गु त्रिकटुकं चूर्णं क्वाथे माषद्वयोन्मितम्। कल्कं घृतं गुडं तैलं मूत्रं च कर्षसंमितम्॥' क्वाथ में जीरा, त्रिकटु आदि द्रव्यों का चूर्ण दो माशे (१२ रत्ती) की मात्रा में डाले तथा कल्क, गुड़, मधु, घृत, तैल तथा गोमूत्र आदि को १ तोले की मात्रा में क्वाथ में मिलाना चाहिये (किन्तु एरण्ड तैल तथा गोमूत्र का प्रक्षेप रोग के अनुसार कुछ कम वा अधिक भी हो सकता है)।

क्वाथ-कल्पना के विषय में एक बात का वर्णन कर देना अत्यन्त आवश्यक है कि जिन औषधद्रव्यों का वीर्य उनके उड़नशील तैलों में रहता है, यथा चन्दन, लौंग, सौंफ, जीरक आदि, उनका क्वाथ बनाने पर उनका वीर्य आकाशीय अंश-प्रधान होने के कारण बाष्प के साथ ही उड़कर निकल जाता है जिसके फलस्वरूप क्वाथ में इच्छित गुणों का समावेश नहीं होने पाता। अतः इस प्रकार के औषधद्रव्यों का कल्क, चूर्ण, हिम, फाण्ट या अर्क तो बना लेना श्रेयस्कर होता है किन्तु क्वाथ-कल्पना व्यर्थ रहती है। अतः इस बात का भी ध्यान भली प्रकार रखना चाहिये।

क्वाथ बनाते समय उस पात्र के मुख को, जिसमें कि क्वाथ बनाया जा रहा हो, नहीं ढकना चाहिये क्योंकि 'अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत्। तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादीनां विनिश्चयः॥' (शार्ङ्ग० सं० म० ख० अ० २।७) क्वाथ बनाते समय पात्र का मुख ढक देने से क्वाथ दुर्जर (भारी)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हो जाता है। इसलिये पात्र का मुख खुला रखकर क्वाथ आदि की कल्पना करनी चाहिये।

क्योंकि क्वथनकाल में भाप के द्वारा औषधद्रव्य का जलीयक्षार तथा उसका गुरुत्व नष्ट हो जाता है अतः क्वाथ बनानेवाले बरतन का मुख खुला ही रखना आवश्यक होता है। किन्तु यह नियम सभी जगह लागू नहीं किया जा सकता। कुछ औषधद्रव्य ऐसे भी होते हैं जिनके तैल तथा गन्ध आदि भागों का क्वाथ में उपस्थित रहना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है और पात्र का मुख खुला छोड़ देने पर औषधद्रव्यों के गन्ध तथा उड़नशील तैल आदि अंश वाष्प के साथ मिलकर उड़ जाते हैं। इसलिये किन्हीं-किन्हीं विशेष अवस्थाओं में इन नियमों को न मानकर पात्र का मुख अपवादस्वरूप बन्द भी रख दिया जाता है। इस मत का निर्णय चिकित्सक को क्वाथ-कल्पना करने के पूर्व ही कर लेना चाहिये और उसी के अनुसार पात्र का मुख बन्द या खुला छोड़कर क्वाथ बनाना चाहिये।

आयुर्वेदोक्त प्रसिद्ध क्वाथ, उनके गुण तथा प्रयोग

(१) गुडूच्यादिक्वाथ—'गुडूची धान्यकारिष्टरक्तचन्दनपद्मकैः। गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः। दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाच्छर्द्य-रुचिं जयेत्॥' अर्थात् गिलोय, धनियाँ, नीम की छाल, लाल चन्दन तथा पद्माख का क्वाथ गुडूच्यादिगण का क्वाथ कहलाता है। यह सर्वज्वरनाशक और दीपन है तथा दाह, हृल्लास, तृष्णा, वमन अरुचि आदि विकारों को दूर करता है।

(२) पर्पटादिक्वाथ—'एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः। किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरबालकैः॥' अर्थात् केवल पित्तपापड़ा ही पित्तज्वर का नाश करने में श्रेष्ठ है। यदि वह लालचन्दन, खस और सुगन्धबाला मिलाकर क्वाथ बनाकर सेवन कराया जाय फिर तो क्या कहना है! अर्थात् अद्वितीय गुणकारी है।

(३) फलत्रिकादिक्वाथ—'फलत्रिकामृतातिक्तानिम्बकैरातवासकैः। जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पाण्डुतां तथा॥' अर्थात् हरड़, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, कुटकी, नीम की छाल, चिरायता और अडूसा का क्वाथ मधु मिलाकर पीने से कामला और पाण्डु दूर होते हैं।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(४) रास्नापञ्चक—'रासनाऽमृता महादारुनागरैरण्डजैः शृतम्। सप्तधातुगते वाते सामे सर्वाङ्गजे पिबेत् ॥' अर्थात् रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ और एरण्ड की जड़ का क्वाथ रास्नापञ्चक कहा जाता है। इसे सप्तधातुगत वात, आमवात और सर्वाङ्गवात में पीने से लाभ होता है।

(५) गोक्षुरक्वाथ—'समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः। नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥' अर्थात् मूलसहिक गोखरुका क्वाथ मिश्री और मधु मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात रोग नष्ट होते हैं।

(६) न्यग्रोधादिक्वाथ—'न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसा बदरी तुणिः। मधुयष्टी प्रियालश्च लोध्रद्वयमुदुम्बरः। पिप्पलश्च मधूकश्च तथा पारसपिप्पलः। सल्लकी तिन्दुकी जम्बूद्वयमाम्रतरुः शिवा। कदम्बककुभौ चैव भल्लातकफलानि च। न्यग्रोधादिगणक्वाथं यथालाभं च कारयेत्। अयं क्वाथो महाग्राही व्रणयो भग्नं च साधयेत्। योनिदोषहरो दाहमेदोमेहविषापहः ॥' अर्थात् बरगद, पाकर, आमड़ा, बेंत, बेर तथा तून की छाल, मुलेठी, चिरौंजी, सावरलोध, पठानी लोध, गूलर की छाल तथा पीपल, महुआ, पारस पीपल, सलई, तेंदू, छोटे और बड़े जामुन, आम, हरड़, कदम्ब, अर्जुन इन सब की छाल और भिलावे के फल यह न्यग्रोधादिगण है। इसके जो द्रव्य प्राप्त हो सकें उनका क्वाथ बनाकर प्रयोग करने से मलावरोध होता है, व्रण में लाभ होता है, अस्थिभंग ठीक होता है और योनिदोष, दाह, मेदोविकार, प्रमेह और विषदोष दूर होते हैं।

(७) पुनर्नवादिक्वाथ—'पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः। गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथः शोथोदरापहः ॥' अर्थात् गदहपूना (साठी), गिलोय, देवदारु, हरड़ और सोंठ का क्वाथ गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर पीने से शोथयुक्त उदररोग दूर होता है तथा पुनर्नवा, दारुहल्दी, हल्दी, सोंठ, हरड़, गिलोय, चित्रक की जड़, भारङ्गी और देवदारु का क्वाथ पीने से हाथ, पैर, पेट और मुख का शोथ निवृत्त होता है। यह दूसरा पुनर्नवादिक्वाथ है जिसका पाठ इस प्रकार है—'पुनर्नवा दारुनिशा निशाशुण्ठी हरीतकी। गुडूची चित्रको भार्गी देवदारु च तैः शृतः ॥ पाणिपादोदरमुखप्राप्तं शोथं निवारयेत्।'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(८) काञ्चनारादिकाथ—'काञ्चनारत्वचः काथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत्। गण्डमालां तथा काथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः।' अर्थात् कचनार की छाल का काथ सोंठ का चूर्ण मिलाकर तथा वरुण की छाल का काथ मधु मिलाकर पीने से गण्डमाला शान्त होती है।

(९) लघुमञ्जिष्ठादिकाथ—'मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशाऽमृता। निम्बश्चैषां कृतः काथो वातरक्तविनाशनः। पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमण्डलजिन्मतः।' अर्थात् मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कुटकी, वच, दारुहल्दी, गिलोय और नीम की छाल का काथ वातरक्त, पामा, कपालिक, कुष्ठ तथा रक्तमण्डल (रक्त के विकार से उत्पन्न हुए चकत्तों) को नष्ट करता है।

(१०) पञ्चवल्कलकाथ—'अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम्। व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम्।' अर्थात् पीपल, गूलर, पाकर, वट (बरगद) और वेत की छाल के काथ से धोने पर व्रण (घाव), शोथ तथा उपदंश नष्ट हो जाते हैं।

उष्णोदक

उष्णोदक-कल्पना के लिए शार्ङ्गधरसंहिता में निम्नलिखित आदेश मिलता है—'अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा। अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत्।' (शा० सं० म० ख० अ० २।१६३) अर्थात् जल को औटाकर अष्टमांश, चतुर्थांश या आधा शेष रहने पर अथवा अच्छी तरह उबलने तक पकाकर स्वच्छ वस्त्रखण्ड से छान लें। इस क्रिया के द्वारा प्राप्त जल को सिद्ध उष्णोदक (पका हुआ जल) कहते हैं। चूँकि उष्णोदक अग्नि पर पकाकर तैयार किया जाता है इसी कारण इसका वर्णन काथ के प्रकरण में किया गया है। एक अन्य प्राचीन परिभाषाग्रन्थ में उष्णोदक-सिद्धि के लिए निम्नलिखित वर्णन मिलता है—'क्वाथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम्। भवत्यर्धावशिष्टं च तदुष्णोदकमुच्यते।' फिर उसी ग्रन्थ में उष्णोदक के अंशावशेष-क्रम से गुणों का निर्देश ग्रन्थकार ने इस प्रकार किया है—'तत्पादहीनं वातघ्नमर्धहीनन्तु पित्तजित्। त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं संग्राह्यग्निप्रदं लघु॥ पादावशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरदि शस्यते। हेमन्ते शिशिरे वर्षास्वर्धहीनं प्रशस्यते॥ शृतशीतं सदापथ्यं लघुनीरे त्रिदोषनुत्।' (मदनविनोद)। उष्णोदक का प्रयोग रात्रिसमय में करना श्रेयस्कर होता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है, जैसा कि शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है—'श्लेष्मवातामभेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम् । कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ।' (शा० सं० म० खं० अ० २।१६४) अर्थात् रात्रि के समय में उष्णजल पीने से कफ, आमवात और मेदोरोग नष्ट होते हैं, बस्ति का शोधन एवं अग्नि का दीपन होता है तथा कास, श्वास और ज्वर शान्त होते हैं। मदनपाल-निघण्टुकार भी रात्रि में उष्णोदक-पान के गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि 'निहन्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति । अजीर्णं च निहन्त्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ।।' अब इसके बाद औषधद्रव्यसिद्ध उष्णोदककल्पना के विषय में विचार किया जायगा।

भेषजसिद्धजलकल्पना—यह कल्पना भी क्वाथ-कल्पना के अन्तर्गत आती है अतः इसका वर्णन इसी प्रकरण में किया जा रहा है। इस कल्पना के विषय में एक विद्वान् का मत है कि 'यदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि । अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ।।' अर्थात् औषधसिद्धजल बनाने के लिए १ तोला औषधद्रव्य के चूर्ण में चौंसठगुना अर्थात् ६४ तोला जल मिलाकर क्वाथविधि से पाक करे, आधा जल शेष रह जाने पर नीचे उतार कर, कपड़े से छानकर तथा ठंडा हो जाने पर रोगी को आवश्यकतानुसार पीने के लिये दे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए जल का प्रयोग रोगी के तृष्णा, वमन आदि दोषों के शमनार्थ तो प्रयोग किया ही जाता है किन्तु क्वाथसाध्य यवागू आदि के बनाने में भी प्रयोग में आता है। आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध 'षडङ्गपानीय' भी इसी प्रकार के औषधद्रव्यों से सिद्ध जल है जो इसी सिद्धान्त के अनुसार बनाया जाता है। यथा—

षडङ्गपानीयम्—शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है कि 'उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः । जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम् ।।' (शार्ङ्ग० सं० म० खं० अ० २, १६२) अर्थात् खस, पित्तपापड़ा, नेत्रबाला, नागरमोथा, सोंठ और लालचन्दन—इन सबका पूर्वोक्त पानीयपरिभाषा के अनुसार जल बनाकर ठण्डा करके पीना चाहिये। यह जल पिपासा तथा ज्वर दोनों को शान्त करता है। लगभग इसी प्रकार का पाठ हमें भैषज्यरत्नावली में भी मिलता है, यथा—'मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः । शृतशीतं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जलं देयं पिपासाज्वरशान्तये ॥' (भै० र० ज्वराधिकार २५) अर्थात् मोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, गन्धबाला तथा शुण्ठी इन छहों द्रव्यों को मिलाकर दो तोला मात्रा में प्राप्त करे (अर्थात् प्रत्येक द्रव्य ४-४ माशे हो)। फिर उसमें चौंसठगुना जल अर्थात् १२८ तोले (लगभग १ सेर नौ। छटाँक) जल डालकर अग्नि पर रखकर क्वाथविधि से पाक करें। जब जल आधा रह जाय तो अँगीठी या चूल्हे पर से उतारकर साफ तथा महीन कपड़े से छानकर ठण्डा हो जाने पर रोगी की प्यास मिटाने के लिये थोड़ा-थोड़ा करके पिलावे। इसके सेवन से प्यास तथा ज्वर दोनों शान्त होते हैं। आचार्य वाग्भट ने इसी षडङ्गपानीय में सोंठ के स्थान पर पद्माख (पद्माख) लेने का संकेत किया है। उनका वचन भी रोग के दोषों को देखकर ठीक ही होगा किन्तु यदि ज्वर आमाशय की दुष्टि के कारण उत्पन्न हुआ है तो ऐसी अवस्था में सोंठ मिलाकर षडङ्गपानीय बनाकर प्रयोग करने से अधिक लाभ होता देखा जाता है।

प्रयोगसंख्या ८

षडङ्गपानीय तैयार करना

द्रव्य नाम	मान		सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
१. खस	२माशा	सब द्रव्य मिलाकर १ तोला		६४ तोला	१. अंगीठी
२. पित्तपापड़ा	" "		जल	(लगभग १३	(अंगारयुक्त)
३. सोंठ	" "			छटांक)	२. मिट्टी का पात्र
४. सुगन्धवाला (नेत्रवाला)	" "				३. एक स्वच्छधातु निर्मित पात्र
५. नागरमोथा	" "				४. स्वच्छ महीन कपड़े का टुकड़ा
६. लाल चन्दन	" "				५. संदंश, चिमटा आदि
					६. इमामदस्ता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विधि—उपर्युक्त खस, लालचन्दनादि द्रव्यों को अलग अलग लेकर चूर्ण कर ले और फिर उन सब द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर एक मिट्टी के बर्तन (हाँडी) में छोड़ दे जिसमें तेरह छटाँक (६४ तोले) पानी रहे। फिर उस जल तथा औषधद्रव्यों के चूर्ण से युक्त हाँडी को अँगीठी पर चढ़ा दे और जल का तब तक पाक करे जब तक कि जल आधा शेष रह जावे। जल के आधे शेष रह जाने पर हाँडी को अँगीठी पर से उतार ले और उसको एक दूसरे पात्र में महीन कपड़े की सहायता से छान ले। इस प्रकार 'षडङ्गपानीय' प्राप्त होता है।

मान—१ तोला औषधद्रव्य को ६४ तोले जल में डालकर बनाने से ५½ छटाँक षडङ्गपानीय प्राप्त होता है।

सावधानियाँ—(१) औषधद्रव्यों का चूर्ण बहुत अधिक बारीक नहीं बनाना चाहिये।

(२) स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

(३) षडङ्गपानीय का प्रयोग ठण्डा हो जाने पर ही करना चाहिये।

लाक्षारसकल्पना—इस रस की कल्पना के हेतु निम्नलिखित पाठ विभिन्न ग्रन्थों में मिलते हैं—'षड्गुणेनाम्भसा लाक्षा दोलायन्त्रे ह्युपस्थिता। त्रिसप्तधा परिस्राव्या लाक्षारसमिदं विदुः ॥' अर्थात् लाख को ६ गुने पानी के अन्दर दोलायन्त्र में पकाकर इक्कीस बार छान लेने से लाक्षारस बन जाता है। इसी प्रकार एक अन्य पाठ भी मिलता है—'षड्गुणेनाम्भसा लाक्षां दोलायन्त्रे विपाचयेत्। त्रिसप्तधा परिस्राव्या लाक्षारसमिमं विदुः ॥' अर्थात् लाख को ६ गुने पानी के अन्दर डालकर दोलायन्त्र में पकाकर, चौथाई शेष रह जाने पर ठण्डा करके इक्कीस बार कपड़े से छान लेना चाहिये। इसको लाक्षारस कहते हैं। लाक्षारस भी क्वाथ-पद्धति पर बनाया गया एक प्रकार का क्वाथ ही है। इसी हेतु इसके निर्माण की विधि का उल्लेख इस प्रकरण में किया गया है। एक दूसरी विधि भी लाक्षारस की प्रचलित है जो नीचे दी हुई है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोगसंख्या ९

लाक्षारसकल्पना

द्रव्य नाम	मान	सहयोगी द्रव्य	मान	उपकरण
लाक्षा	६ माशा	१. लोध्रत्वक्-चूर्ण	लाक्षा से $\frac{1}{10}$	१. कटोरी
			लोध्र से $\frac{1}{10}$	२. चाकू
		२. सर्जिकाक्षार	स्वल्प (किञ्चित्)	३. कपड़ा
		३. बदरपत्रकल्क		४. अँगीठी
		४. जल	८ तोले	५. संदंश आदि

विधि—लाख, लोध्र, बदरीपत्रकल्क और सर्जिकाक्षार को उपर्युक्त मात्रा में एक कपड़े की पोटली में रखकर ऊपर कही गई मात्रावाले पानी में लटका दे और अँगीठी पर पाक के हेतु रख दे। बीच बीच में संदंश (संड़सी) तथा चाकू की सहायता से पोटली को दबा-दबाकर निचोड़ते रहे। इस प्रकार चढ़ाये हुए पानी में लाख निचुड़ आने पर कटोरी को अँगीठी पर से उतार ले। अँगीठी में मध्यम आँच पर लाक्षारस का पाक करना चाहिये और चतुर्थांश शेष रह जाने पर ही अँगीठी से नीचे उतारना चाहिये। इस प्रकार लाक्षारस बनकर तैयार होता है।

मान—लगभग दो तोला लाक्षारस प्राप्त होता है।

सावधानियाँ—सहायक द्रव्यों का अनुपात उपर्युक्त ही रहना चाहिये कम या अधिक होने से लाक्षारस के गुणों में न्यूनाधिक्य आ जाता है।

मांसरस-कल्पना

मांसरस भी एक प्रकार का क्वाथ है अतः उसकी कल्पना का वर्णन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

क्वाथकल्पना के अन्तर्गत ही किया गया है। आयुर्वेदपरिभाषाकार के मतानुसार मांसरस का निर्माण निम्नलिखित विधि से किया जाना चाहिये— 'द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतो द्विगुणं पयः। पादस्थं संस्कृतं चाज्ये षडङ्गो यूष उच्यते॥ पलानि द्वादशप्रस्थे घनेऽथ तनुके तु षट्॥' अर्थात् द्रव्य (दाल आदि) से दुगुना मांस ले तथा सबका आठगुना जल डालकर अँगीठी पर रखकर मन्द आँच पर पकावे। जब चौथाई (अर्थात् गृहीत द्रव्यों का दुगुना) जल शेष रह जावे तो अँगीठी पर से उतारकर छान ले तथा उसमें घी का छौंकन (बघार) देकर संस्कृत कर ले। इसी को षडङ्ग मांसरस कहते हैं। तथा यदि मांस का गाढ़ा रस तैयार करना हो तो बारह पल मांस एक प्रस्थ जल में और यदि तनु (पतला) रस तैयार करना हो तो ६ पल मांस एक प्रस्थ जल में सिद्ध कर चौथाई शेष रहने पर उतार ले और यदि अत्यन्त पतला मांसरस तैयार करना हो तो एक प्रस्थ जल में एक पल मांस सिद्ध कर चौथाई शेष रहने पर उतार ले। इसी विषय पर एक अन्य विद्वान् का निम्नलिखित मत है—'रसे साध्यं जलं देयं मांसं सिध्यति यावता। पलाष्टकं जले प्रस्थे घनेऽथ मध्यमे तु षट्॥ मांसस्य वंटनं कुर्यात् कुडवं तनुके रसे॥' अर्थात् ६४ तोले जल में यदि गाढ़ा मांसरस बनाना हो तो ३२ तोला, यदि मध्यम प्रकार का मांसरस बनाना हो तो २४ तोला और यदि पतला मांसरस बनाना हो तो १६ तोला मांस देकर क्वाथविधि से पाक करे जल के चतुर्थांश शेष रहने पर स्वच्छ महीन वस्त्र से छान ले और धीरे-धीरे ठण्डा हो जाने पर ही यथारुचि प्रयोग में लाना चाहिये।

मांसरस के भी कृत तथा अकृत ये दो भेद माने जाते हैं। जिस मांसरस में नमक, सोंठ इत्यादि कटु द्रव्य (मसाला) न डाला जाय तथा स्नेह (घृत, तैल) का छौंक (बघार) न दिया जाय उस मांसरस को अकृत मांसरस कहते हैं तथा जिस मांसरस में नमक, कटुद्रव्य तथा स्नेह का छौंक दिया जाय उसको कृत मांसरस कहते हैं। इसके विषय में सुश्रुतसंहिता में कथित परिभाषा लागू होती है, यथा—'अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटुकैर्विना। विज्ञेयं लवणस्नेहकटुकैः संयुतं कृतम्॥' इति।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भावप्रकाश निघण्टुकार ने मांसरस (शोरवा) के विषय में कहा है—'सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः। प्रीणनो वातपित्तघ्नक्षीणानामल्परेतसाम् ॥ विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकांक्षिणाम्। स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम्। शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम् ॥ प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांससम्भवाः ॥' (भा. प्र. निघण्टु, कृतान्न वर्ग, मांसप्रकार प्रकरण, १०२–१०६) अर्थात् समुचित प्रकार से बना हुआ मांसरस रुचिकारक, तृप्तिदायक, वात तथा पित्तनाशक और परिश्रम, श्वास तथा क्षयनाशक है। क्षीणवीर्य अथवा अल्पवीर्य वालों को पुष्टिकारक, ढीली तथा टूटी हुई सन्धियों को जोड़ने वाला तथा शरीर की शुद्धि चाहने वालों को; ओज, स्मृति और बल से हीनों को; ज्वर से क्षीण हुये तथा क्षत रोग वालों को; स्वर हीनों को; दृष्टि, आयु और श्रवणशक्ति बढ़ाने वालों को और स्वस्थ पुरुषों को मांसरस परम हितकारी है। मांसरस बनाने के कई विधान हैं।

मांसरस को यूनानी वैद्यक में यख़नी, अरबी में माउल्लम तथा फारसी में शोरवा व आबेगोस्त कहते हैं। अंग्रेजी में मीटजूस (Meat juice) तथा मीटसूप (Meat soup) नाम से भी इसका वर्णन मिलता है। इसको तैयार करने की विधि निम्नाङ्कित है—'MEAT Juice Raw—Scrape $\frac{1}{4}$ lb. of lean meat into a saucer. Cover with cold water and leave it for an hour in a cool place protected from dust. Then strain through muslin.'

यह हुआ कच्चा (अपक्व) मांसरस। अब आगे पक्व मांसरस बनाने की विधि देखिये—'Take a pound of freshly killed lean meat of chicken or kid. Cut it small and put it with a pint of cold water into a covered jar, in a warm oven, until it is cooked. Or it may be cooked in a sauce pan over a fire, but it must only simmer, and should not

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

be boiled. Skim it now and then and stir, whether in a jar or sauce pan. Pour of the meat tea, when cooked, through a strainer with large holes in it through which the sediment can pass, and let it stand in a shallow dish till quite cold, when the fat can be removed in a solid cake.

BROTH—Mutton, chicken and veal broths are made in the same way as beef tea, in a sauce pan over the fire. The broth must be well skimmed. An old fowl will answer to purpose very well, or the lean part of neck of mutton. The Bones are not removed from the meat.'

वेशवार-कल्पना—सुश्रुतकार ने वेशवार बनाने के लिये निम्न विधि का उल्लेख किया है—'मांसं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्दृषदि पेषितम्। पिप्पली-खण्डमरिचगुडसर्पिःसमन्वितम्॥ एकध्यं विपचेत्सम्यग् वेशवार इति स्मृतः॥' अर्थात् अस्थिरहित मांस को पहले पानी में उबालकर अच्छी तरह गला लें। तत्पश्चात् उसे शिलापर पुनः बारीक पीस लें और उसमें पिप्पली, खांड, कालीमिर्च, गुड़ तथा घी मिलाकर इकट्ठा ही पकावें। यह कल्पना 'वेशवार' कहलाती है। चरककार वेशवार के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं—'वेशवारो गुरुः स्निग्धो बलोपचयवर्धनः॥' (च. सू. अ. २७, २६४) अर्थात् वेशवार भारी, स्निग्ध, बलवर्धक, मांस आदि धातुओं के उपचय को बढ़ाने वाला होता है। भावप्रकाशकार वेशवार के गुणों का विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—'द्रव्याणि वेशवारस्य नागवल्लीदलानि च। तण्डुलाश्च लवङ्गानि मरिचानि समासतः॥ अनेन विधिना सिद्धं शुद्धमांसमिति स्मृतम्॥ शुद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च बृंहणम्। त्रिदोषशमनं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्धनम्॥' अर्थात् वेशवार का मसाला पान, चावल, लौंग और मिर्च संक्षेप में समझना चाहिये। इनको डालकर पकाया

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हुआ मांस सिद्धमांस कहलाता है। यह अत्यन्त वृष्य, वलदायक, रुचिकारक, पुष्टिकारक, त्रिदोषनाशक, श्रेष्ठ अग्निदीपक और धातुवर्धक है।

क्षीरपाक

क्षीरपाक भी क्वाथ का एक प्रकार भेद ही है अतः इसका वर्णन भी क्वाथकल्पना अध्याय में ही दिया जा रहा है। क्षीरपाक करने का उद्देश्य दूध को पचने में हल्का (लघु) तथा आहार व औषधद्रव्यों के साथ अनुपानादिरूप में देने के लिये किया जाता है। साथ ही साथ एक विशेष प्रयोजन और भी है जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं कि कुछ द्रव्यों का कषायांश या तीक्ष्णवीर्य कल्प में अधिक मात्रा में न आने पावे इसके लिये भी उन औषधद्रव्यों का क्षीरपाक किया जाता है। इसी प्रकार दशमूल आदि ओषधियों का क्षीरपाक कर लेने में भी कोई हानि नहीं होती किन्तु लहसुन, भल्लातक आदि तीक्ष्णवीर्य द्रव्यों अथवा अर्जुन व अशोक की छाल जैसे औषध द्रव्यों को दूध के साथ पकाना आवश्यक होता है। इससे औषधद्रव्यों की वीर्य की तीक्ष्णता तो कम हो ही जाती है साथ ही साथ औषध द्रव्य के गुणों में रोगी को लाभ पहुँचाने की उचित शक्ति भी आ जाती है। अव क्षीरपाक किस प्रकार किया जाय तथा उसकी क्या परिभाषा है इसके विषय में बताते हुए एक विद्वान् का मत है—'क्षीरं तिथिगुणं दद्यात् क्षीरान्नीरं समं मतम्। क्षीरावशेषं कर्त्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः॥' तथा 'क्षीरादिसहितं च द्रव्यं न सम्यग् भुक्तरसं भवतीति वारिक्वाथपूर्वकं क्षीराद्यैस्तदुपदेशोऽनुपदग्धं क्वाथयेत्॥' (अ. सं. क. अ. ८) अर्थात् औषधद्रव्य को कूट कर दरदरा करके उसमें पन्द्रह गुना दूध और दूध के बराबर मात्रा में ही जल मिलाकर पाक करें। पानी के जल जाने पर दूध मात्र शेष रह जाने पर महीन कपड़े से छान लें। इस कल्पना को आचार्यों ने क्षीरपाक संज्ञा दी है। इसी प्रसङ्ग में वृद्धवाग्भटाचार्य भी लिखते हैं कि क्षीरादि के साथ औषधद्रव्य का पाक करने से वह औषधद्रव्य अपना संपूर्ण रस (सारभाग) क्षीर आदि द्रव्य में नहीं छोड़ता। इसी कारण पहले औषधद्रव्य को जल में पका कर उसके क्वाथ के साथ क्षीर आदि को इस प्रकार पकाना चाहिये कि वे जलने न पावें। इसी विषय में एक अन्य विद्वान् का भी

Book No..........
Acc No....00.900.....

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मत है कि 'द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥' अर्थात् यदि क्षीर का पाक करना हो तो द्रव्य से आठगुना दूध तथा दूध से चौगुना जल इकट्ठा करके मन्दाग्नि पर पाक करे। जब सब पानी जल जाय तथा केवल दूध ही बचे तब उतार कर महीन कपड़े से छान लेना चाहिये। यही क्षीरपाक विधि है।

इन्हीं विद्वान् महोदय ने आगे भी कुछ नियम बताते हुए कहा है कि—'क्षीरमस्त्वारनालानां पाको नास्ति विनाम्भसा । सम्यक् पाकं न गच्छन्ति तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥' अर्थात् दूध, मट्ठा (मस्तु) तथा काँजी आदि को औषधद्रव्य के साथ पकाने से विना जल दिये हुए उनका पाक ठीक प्रकार से नहीं हो पाता अतः इनके साथ चौगुना पानी मिला कर पाक करना चाहिये ताकि औषधद्रव्यों का वीर्य ठीक से उन पदार्थों में उतर आवे और वे औषध सिद्ध हो जावें। इसी विषय पर आचार्य शार्ङ्गधर जी का मत है—'क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ॥' (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. २, १६५) अर्थात् क्षीर पाक के लिये गृहीत द्रव्य से आठ गुना दूध तथा दूध से चार गुना जल मिला कर सबको एक पात्र में एकत्रित कर पाक किया जाय और दूध मात्र शेष रहने पर छान कर पीने से आमशूल को शान्त करता है।

प्रमथ्याकल्पना

प्रमथ्या भी क्काथकल्पना का एक भेद है इसीलिये इस कल्पना का वर्णन भी क्काथ के प्रसंग में कर दिया जाना उचित है अस्तु, प्रमथ्या के विषय में शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है—'प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात् कल्कीकृताच्छृता । तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥' (शार्ङ्ग. सं. म. खं. अ. २, १५४) अर्थात् एक पल (चार तोले) औषधद्रव्य का चूर्ण कर उसको जल में पीस कर कल्क निर्माण करें। फिर उसको आठगुने जल में (३२ तोला जल में) पकावें और दो पल (आठ तोला) शेष रह जाने पर स्वच्छ तथा महीन वस्त्र से छान कर ठण्डी हो जाने पर रोगी को पीने के लिये दें। इसी को प्रमथ्या नामक कल्प कहते हैं।

इसी प्रमथ्या के विषय में आयुर्वेद के आचार्यों के निम्नलिखित मत हैं—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अष्टाङ्गहृदय की व्याख्या (चि. स्था. अ. ९) में अरुणदत्त ने लिखा है— 'कृतयूषः प्रमथ्या स्याद् द्रव्यात् कल्कीकृताच्छृतात् ।' अर्थात् द्रव्य का कल्क बना कर क्वाथ करने से प्रमथ्या बनती है तथा चक्रपाणिदत्त ने भी 'प्रमथ्यां मध्यदोषाणां दद्याद्दीपनपाचनीम्' (च. चि. अ. १९, १९) चरक के इस सूत्र को व्याख्या करते हुए लिखा है—'प्रमथ्यामिति पाचनदीपन-कषायं, प्रमथ्याशब्दो हि वृद्धपरम्परया पाचनदीपनकषाये वैद्यकशास्त्रे परिभाषितः श्रूयते ॥' अर्थात् वैद्यकसम्प्रदाय के आचार्यगण प्रमथ्या का अर्थ पाचन-दीपन कषाय के रूप में करते हैं इस प्रकार की धारणा है अतः प्रमथ्या माने पाचन दीपन कषायम् इति। इतना ही नहीं वृद्धवाग्भट्ट महोदय भी अपने ग्रन्थ की अतिसारचिकित्सा के प्रकरण में लिखते हैं—'मध्यदोषस्तु विशोषयन् मागधीनागरवचाभूतीकधनिकाहरीतकीनां क्वाथं पिबेत्, जलदजल-बिल्वपेशिका शुण्ठीधान्यकानां वा, उभयमपि चैतत् प्रमथ्याख्यम् ॥' अर्थात् मध्यदोष वाला अतिसार का रोगी लङ्घन करने के बाद पीपल, सोंठ, वच, अजवाइन, धनियाँ और हरड़ का क्वाथ बना कर पीवे अथवा नागरमोथा, खस, बेल (बिल्व), सोंठ तथा धनिये का क्वाथ बना कर पीवे। इन दोनों क्वाथों को प्रमथ्या कहते हैं। सम्भवतः इन मतों में से अरुणदत्त की व्याख्या के ही आधार पर शार्ङ्गधरमहोदय ने भी यह परिभाषा बना कर लिखी है ऐसा प्रतीत होता है। यहाँ पर औषधद्रव्य की जो १ पल या ४ तोला मात्रा लिखी गई है वह कुछ अधिक प्रतीत होती है। इसीलिये रोगी, रोग तथा औषधद्रव्य के बलाबल का भली प्रकार विचार करके १ से २ तोला की मात्रा में औषधद्रव्य लेना उचित प्रतीत होता है क्योंकि औषधद्रव्य का पहले कल्क बना लेने के बाद क्वाथ बनाने से उस औषधद्रव्य का सारभाग क्वाथ्य जल में अधिक मात्रा में उतर आवेगा जो कि सम्भवतः रोगी व रोग के बलाबल की दृष्टि से अनुचित मात्रा में अथवा किञ्चित् हानिप्रद भी हो जा सकता है। अतः प्रमथ्याकल्पना के हेतु आजकल १ से २ तोला की मात्रा में औषधद्रव्य का ग्रहण करना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

पाश्चात्य चिकित्साप्रणाली के भैषज्यकल्पनाशास्त्र के मतानुसार प्रमथ्या का समावेश भी डिकॉक्शन (Decoction) नामक क्रिया के अन्तर्गत ही कर लिया जाता है।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रयोगसंख्या १०

मुस्तादि प्रमथ्या तैयार करना

द्रव्यनाम	मान	सहयोगी द्रव्य	मान	उपकरण
१. नागरमोथा २. इन्द्रयव	२ तो० २ तो०	जल	३२ तोला	कटोरी (पात्र), संदंश, चिमटा, अंगीठी, खरल, मूसल, स्वच्छ महीन वस्त्र, नपना गिलास आदि

विधि—नागरमोथा तथा इन्द्रयव आदि औषधद्रव्यों को लेकर साफ करें और इमामदस्ते में डालकर उनका चूर्ण बनावें चूर्ण बन जाने पर उसमें थोड़ा सा जल मिलाकर सिल-बट्टे पर पीस कर कल्क तैयार करें फिर इस तैयार हुए कल्क के गोले को एक पात्र (ताम्र या धातुनिर्मित कटोरी) में रखें और उसमें ३२ तोला जल मिलाकर अंगीठी पर पाक करने के लिये चढ़ा दें। जल के चतुर्थांश (लगभग आठ तोला) शेष रह जाने पर पात्र को आग से उतार लें और ठण्डा हो जाने पर महीन कपड़े से छान लें। इस प्रकार प्रमथ्या (मुस्तादिप्रमथ्या) तैयार हो जायगी। प्रयोग करते समय इसमें मधु मिलाकर रोगी को देना चाहिए।

मान—इस प्रकार उपर्युक्त क्रिया करने से लगभग १० तोला प्रमथ्या तैयार होगी।

प्रयोगविधि—मधु मिलाकर पान कराने से यह प्रमथ्या रक्तातिसार नामक रोग का विनाश करती है ऐसा शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है।

यूषकल्पना

यूषकल्पना के विषय में प्राचीन आचार्यों का निम्नलिखित मत पथप्रदर्शक का कार्य करता है, यथा काश्यपसंहिता में आचार्य लिखते हैं—'द्रवैर्बहुविधैर्द्रव्यैस्तथा चान्नैरतण्डुलैः। यूष इत्युच्यते सिद्धो यवागूस्तण्डुलैः सह ॥'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(काश्यपसंहिता खिलस्थान (पर्व) अ० ७) अर्थात् जल, क्काथ, तक्र (छाछ) आदि द्रव पदार्थ और औषधद्रव्य के साथ मूँग, मसूर, मोठ आदि शिम्बी धान्य को पकाकर जो कल्प तैयार किया जाता है वह 'यूष' कहा जाता है तथा चावल, जौ आदि शूक धान्यों को पकाकर जो कल्प तैयार किया जाता है वह 'यवागू' नाम से पुकारा जाता है। यूष तथा यवागू की कल्पना औषधद्रव्यों के विना तथा केवल अन्न और जल से ही होती है। यवागू तथा यूषादिकों के निर्माण में भी जल का प्रयोग पकाकर क्वाथवत् ही किया जाता है अतः यूष तथा यवागू आदि का समावेश भी क्वाथ-प्रकरण में किया जाता है। अब आगे आचार्य यूष बनाने के सिद्धान्त तथा विधि के विषय में लिखते हैं—'कर्षमष्टमिकां वाऽपि कल्कद्रव्यस्य वा पलम्। वारिप्रस्थेन विपचेत् स द्रवो यूष उच्यते ॥' अर्थात् यूष यदि तीक्ष्णवीर्य औषध से बनाना हो तो १ तोला, यदि मध्यवीर्य औषध से बनाना हो तो २ तोला तथा यदि मृदुवीर्य औषध से बनाना हो तो ४ तोला औषध का कल्क बनाकर उसमें ४ से ८ तोला तक मूँग आदि शिम्बी धान्य और ६४ तोला जल आदि द्रव पदार्थ डाल कर पकावें तथा आधा या चौथाई जल शेष रहने पर कपड़े से छानकर पीने को दें।

इसी विषय पर शार्ङ्गधरसंहिताकार लिखते हैं—'कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी। वारिप्रस्थेन विपचेत्स द्रवो यूष उच्यते ॥' (शार्ङ्ग० सं० अ० ख० अ० २।१५८) अर्थात् मृदुवीर्य कल्क द्रव्य एक पल और सोंठ तथा पीपल (यदि तीक्ष्णवीर्य द्रव्य लेना हो तो) आधा कर्ष लेकर कल्क बनाया जावे और उसको एक प्रस्थ जल में पकाया जावे और अर्धावशेष रहने पर छान लिया जावे। यह द्रव 'यूष' (जूस) कहा जाता है। यही परिभाषा कल्कसाध्य यवागू के लिये भी लागू होती है यथा 'कर्षार्धं वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम्। विनीय पाचयेद् युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ॥' तथा 'यूषांश्च रसकांश्चैव कल्पेनानेन साधयेत्। अर्धशिष्टो भवेद् यूषः क्वचित् पादावशेषितः ॥' इत्यादि।

वैद्यकपरिभाषाप्रदीपकार भी अपने मत का प्रतिपादन करते हुए यूष आदि कल्पना का सिद्धान्त बताते हैं—'काथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रापयित्वा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

जलाढके। पादावशेषे तेनाथ यवाग्वाद्युपकल्पयेत्॥ यूषांश्च रसकांश्चैव कल्पनानेन साधयेत्॥' अर्थात् क्वाथ करने के द्रव्य चार पल लेकर कूट लें तत्पश्चात् उसमें एक आढक अर्थात् ६४ पल जल डाल कर पाक करें। जल के चतुर्थांशावशिष्ट रह जाने पर उतार कर छान लेवें। इसी क्वाथ से फिर यवागू आदि का पाक करें। यूष तथा रस आदि का पाक भी इसी तरह सोलह गुना जल डाल कर चौथाई शेष वाले क्वाथ से करें। यूष के भी कृत तथा अकृत इस प्रकार दो भेद किये गये हैं। यथा 'अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटुकैर्विना। विज्ञेयं लवणस्नेहकटुकैः संयुतं कृतम्॥' अर्थात् जिस यूष में नमक और सोंठ आदि कटु द्रव्य (मसाला) न मिलाया जाय तथा घृत का छौंक (बघार) दिये बिना ही बनाया जाय उसको अकृत यूष कहते हैं तथा जिस यूष में नमक, कटु द्रव्य तथा स्नेह (घृत, तैल आदि) का छौंक दिया जाय उसे कृत यूष संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार बनाये हुए यूष का प्रयोग रोगी को पथ्य देते समय किया जाता है। आधुनिक चिकित्साशास्त्र में यूष का प्रयोग 'स्ट्रेण्ड एक्सट्रेक्ट' (Strained extract) के नाम से किया जाता है तथा इसके हेतु परवल, नेनुआ (तरोई), लौकी आदि तरकारियों का रस तथा मांस का रस आदि का प्रयोग रोगी को पथ्य देने के लिये किया जाता है। इसी रस बनाने का एक उदाहरण पाश्चात्य वैद्यकग्रन्थ से लेकर दिया जाता है ताकि पाठकों को इस विषय की भी एक झलक प्राप्त हो जावे।

Preparation from Dal for the sick—Boil a seer of water, then add 8 ounces of Dal mixed with a little ghee, and some ground saffron, pepper and coriander. Allow this to boil for about half an hour, occasionally stirring. If the mixture is becoming too thick and the Dal grain not well cooked, more boiling water must be added. This is continued until no trace of grain is left, then salt added to flavour. If the patient is verey ill, only a strained extract is given; in other cases it is

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

well mixed into a paste and fried with a little ghee, browned onions and garlic. Moong and Moth are the only two kinds of Dal which it is advisable to use in sickness.

The following preparation is very useful in acute cases when solid food is not permitted, and the patient is tired of taking (or cannot take) milk; it is an excellant substitute for mutton or chicken broth among the Hindus who are unable to take meat in any form– Take one chhatak of each of the following Dals-Moong, Moth, Masur and Arhar. Cook as above. This can be given to a patient three or four times daily, and is a very nourishing form of Rasa or Dal Soups. (Omera's Medical guide for India, IVth ed. P. P. 454-455).

उपर्युक्त अंग्रेजी में दिये गये गद्यांश का भाव अति सरल तथा स्पष्ट है अतः उसका अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।

प्रयोगसंख्या ११

सप्तमुष्टिक यूषनिर्माण करना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
१. कुलत्थ (कुलथी)	१ मुष्टि १ पल	जल	१ प्रस्थ	बड़ा पात्र (स्थाली)
२. जौ	,, ,,		(६४ पल)	अंगीठी
३. मूँग	,, ,,			संदंश
४. छोटी मूली की जड़ (शुष्क)	,, ,,			चिमटा
				स्वच्छ वस्त्र
५. सोंठ	,, ,,			१ बड़ी कटोरी
६. बेर	,, ,,			ताम्र आदि धातु
७. धनियाँ	,, ,,			की बनी हुई ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

विधि—ऊपर लिखे हुए सातों द्रव्यों को एक-एक मुट्ठी की मात्रा में लेकर एक स्थाली में एकत्र कर लें या उपर्युक्त सातों द्रव्यों को १ पल (चार तोले) की मात्रा में एक हँडिया में डालकर उसमें १ प्रस्थ शुद्ध पानी भर लें। तत्पश्चात् इस द्रव्य तथा जल युक्त पात्र को अंगीठी की आँच पर पाक होने के लिये रख दें तथा आधा जल शेष रहने पर पात्र को अँगीठी पर से उतार लें और कुछ शीतल हो जाने पर महीन स्वच्छ वस्त्र से छान लें। यही सप्तमुष्टिक नाम का यूष होगा।

नोट—कुछ टीकाकारों व विद्वानों का मत है कि उपर्युक्त यूष में कुलत्थादि प्रत्येक द्रव्य की एक-एक मुट्ठी लेनी चाहिये और चक्रदत्त के पञ्चमुष्टियूष की टीका करते हुए एक विद्वान् लिखते हैं कि प्रत्येक द्रव्य को (यवादि आहार द्रव्य हैं अतएव) एक एक पल की मात्रा में भी लेना ठीक है। पर आजकल के मन्दानल पुरुषों के लिये सन्निपातज्वरादि से पीड़ित होने की अवस्था में एक एक मुट्ठी वा एक एक पल ये दोनों ही मात्राएँ बहुत अधिक प्रतीत होती हैं। अतः सबको मिलाकर एक पल की मात्रा में ही लेना चाहिये। यही मत अधिक उचित माल्रूम होता है।

मान—इस प्रकार उपर्युक्त विधि से ३८ पल के लगभग सप्तमुष्टिक यूष प्राप्त होगा।

गुण—इस सप्तमुष्टिक यूष के सेवन करने से कफ, वात, सन्निपातज्वर और आमवात आदि रोग दूर होते हैं तथा कण्ठ, हृदय तथा मुख का शोधन होता है।

अन्नप्रक्रिया

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत यवागू, विलेपी तथा पेया आदि कल्पनाओं का समावेश होता है जैसा कि शाङ्गंधरसंहिताकार लिखते हैं—'अथान्नप्रक्रियाऽत्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरात्। यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृशरा घना। तण्डुलैर्माषमुद्गैश्च तिलैर्वा साधिता हिता। यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पिणी वातनाशनी॥' अर्थात् अब अन्न की प्रक्रिया (यवागू, विलेपी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

और पेया आदि की साधनविधि) संक्षेप में कही जाती है। छः गुने जल में पकाने से यवागू—गाढ़ी कृशरा-(खिचड़ी) तैयार होती है। चावल, उड़द, मूँग अथवा तिलों के मेल से छः गुने जल में सिद्ध की गई यवागू मल को रोकने वाली, बल देने वाली, तृप्ति करने वाली तथा वायु का शमन करने वाली होती है।

यवागू:—ऊपर के श्लोक में शार्ङ्गधरसंहिताकार यवागू बनाने की विधि बतला चुके हैं। अब अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थकारों के मतों का भी अवलोकन कीजिये। सुश्रुतकार क्वाथसाध्य यवागूकल्पना के विषय में लिखते हैं—'यवागूस्त्रिविधा प्रोक्ता मण्डः पेया विलेप्यपि। सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता।' तथा 'यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा॥' (सु. सू. अ. ४६) अर्थात् यवागू तीन प्रकार की कही गई है—मण्ड, पेया और विलेपी। मण्ड भक्तावयवरहित होता है, पेया भक्तावयवयुक्त होती है और विलेपी यवागू बहुत भक्तावयवयुक्त और अल्पद्रवयुक्त होती है। इस प्रकार मण्ड, पेया और विलेपी यवागू के ही तीन प्रकार हैं। चरककार भी यवागू के इन्हीं तीनों भेदों को मानते हैं किन्तु कुछ ग्रन्थकार तथा टीकाकार 'यवागू' को कृतान्न का एक स्वतन्त्र चौथा प्रकार मानते हैं।

यवागू के विषय में विवेचना करते हुए भी शिवदाससेन लिखते हैं कि 'द्रवसिक्थसमन्वितत्वमेव यवागूसामान्यलक्षणम्॥' तथा यवागू का सामान्य लक्षण बताकर लिखते हैं कि 'चतुर्दशगुणसिद्धस्यापि मण्डस्य सिक्थसमन्वितावस्थायां यवागूत्वमेह॥' इस प्रकार सेन महोदय ने बहुद्रव तथा स्वल्प सिक्थयुक्त मण्ड को ही यवागू संज्ञा प्रदान की है।

क्वाथसाध्य यवागूकल्पना

'यवागूस्त्रिविधा प्रोक्ता मण्डपेयाविलेप्यपि। सिक्थकै रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता। यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा (सु. सू. अ. ४६) तथा 'यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत्' (सु. चि. अ. ३८) तथा आगे भी कहा है कि 'कुर्याद्भेषजसंसिद्धे विलेपीं तु चतुर्गुणे। मण्डं चतुर्दशगुणे पेयां वै षड्गुणेऽम्भसि॥' कहने का भाव यह है कि

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

औषधसिद्ध जल से यवागूनिर्माण किया जाता है। यही कारण है कि यवागू-कल्पना का वर्णन कहीं कहीं पर 'भेषजसिद्ध पानीयकल्पना' के अन्तर्गत ही किया जाता है। 'मण्ड, पेया और विलेपी भेद से यवागू तीन प्रकार की कही गई है। अतः जिस यवागू में सिक्थ (सीठी) का भाग छोड़ कर केवल ऊपर के द्रव भाग का ही ग्रहण किया जाय उसे 'मण्ड' संज्ञा दी जाती है। तथा जिस यवागू में सिक्थ अधिक हो और द्रव भाग कम हो उसे 'पेया' कहते हैं। इसी प्रकार जिस यवागू में सिक्थ अधिक हो और द्रवभाग कम हो उसको 'विलेपी' कहते हैं। यवागू देने का साधारण सिद्धान्त यह है कि जिस व्यक्ति या रोगी को यवागू देना है वह एक समय में रुचिपूर्वक जितना भात खाता हो उसका चतुर्थांश चावल यवागू बनाने के हेतु लेना चाहिये और यदि मण्ड बनाना हो तो मोटे पीसे हुए चावल में चावल से चौदहगुना औषधसिद्ध जल देना चाहिये तथा चावलों के भलीभाँति पक जाने पर पक्व तन्डुल के ऊपर का द्रव भाग निथार कर रोगी को पानार्थ देवे। इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि 'पेया' निर्माण करना हो तो मोटे पिसे हुए चावलों में चावल से छः गुना औषधसिद्ध जल मिलाकर इस अन्दाज से पाक करें कि पक्व पदार्थ में द्रवांश तो अधिक रहे किन्तु सिक्थ कम ही शेष रहने पावे। इसी प्रकार यदि विलेपी बनानी हो तो मोटे पीसे चावलों में चार गुना औषधसिद्ध जल देकर इस विधि से पाक करें कि पाक होने पर पक्व वस्तु में सिक्थ अधिक रहे तथा द्रवांश अपेक्षाकृत कम रहे।

ऊपर हम श्री शिवदास सेन का मन्तव्य लिख चुके हैं। उसके अनुसार हमें यह ज्ञात होता है कि श्री शिवदास सेन महोदय ने यवागू के दो ही भेद माने हैं जिनका नाम उन्होंने क्रमशः पेया और विलेपी दिया है। उनके मतानुसार पेया तथा विलेपी दोनों प्रकार के यवागूभेदों में यवागू के पतले भाग को 'मण्ड' कहते हैं अतः मण्ड नाम का पृथक् यवागूभेद नहीं माना जा सकता वरन् उसका समावेश यवागू के शेष दो प्रकारों (पेया तथा विलेपी) के अन्तर्गत ही किया जाता है।

साधारण भाषा में भी भात के ऊपर के पानी को माँड (मण्ड) कहा जाता है। उबाले हुये जौ के पानी को यवमण्ड कहा जाता है। यवागू बनाने

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

के लिये चावल के अतिरिक्त जौ, सावाँ, गवेधुक आदि अन्य शूकधान्यों का भी प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार यवागूनिर्माण में औषधसिद्ध जल के स्थान पर तक्र (छाछ), मांसरस, साधारण शुद्ध जल आदि द्रव पदार्थों का भी उपयोग हो सकता है। किन्तु सब में तण्डुल तथा द्रव पदार्थों का प्रमाण उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार ही होना चाहिये। यवागू में यदि घृत, तैल आदि स्नेहद्रव्यों के प्रयोग का विधान निर्दिष्ट हो तो उन उक्त स्नेहों में प्रथमतः तण्डुलों को सेंककर, तदुपरान्त पीसकर तथा उसके अनन्तर उसमें द्रव पदार्थ आदि डालकर यवागू बनानी चाहिये। इसी प्रकार जहाँ यवागू के पाठ में चावल न लिखा हो तथा केवल औषधद्रव्यों का ही उल्लेख मात्र हो वहाँ पर भी परिभाषा में कहे गये प्रमाण के अनुसार ही चावल डालने चाहियें। यदि यवागू के निर्माण में जौ, सावाँ आदि अन्य प्रकार के तण्डुलप्रकारों का उल्लेख किया हो तो वहाँ पर चावल न डालकर वे ही कथित द्रव्य चावल की जगह डालने चाहियें।

कल्कसाध्य यवागूकल्पना—'कषमष्टमिकां वाऽपि कल्कद्रव्यस्य वा पलम्। विनीय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ॥' अर्थात् वीर्यभेद से औषधद्रव्य तीक्ष्ण, मध्य तथा मृदु—तीन प्रकार का कहा गया है। इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि कल्कसाध्य यवागू तीक्ष्णवीर्य औषध से बनानी हो तो १ तोला, मध्यवीर्य औषधकल्क से बनानी हो तो २ तोले और यदि मृदुवीर्य औषध से बनानी हो तो ४ तोले औषध का कल्क बनाकर उसमें जिसको यवागू देनी है वह एक समय में रुचिपूर्वक कितना भात खा सकता है उस मात्रा का चतुर्थांश मोटे पीसे चावल लेकर उनमें ६४ गुना जल देकर मण्ड, पेया अथवा विलेपी में से जिस प्रकार की यवागू बनानी हो उसके अनुसार ही पाक करे। इस प्रकार क्रिया करने से कल्कसाध्य यवागू बनती है।

अभी तक तो यवागूविषयक सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन किया गया। अब आगे यवागू के भेद आदि का वर्णन तथा उनकी कल्पना (निर्माण) विधि का पृथक्-पृथक् तथा विस्तार से वर्णन किया जायगा।

मण्ड—ऊपर यवागू का परिचय देते समय उसमें 'मण्ड' का परिचय भी दिया जा चुका है अतः यहाँ पर मंण्डभेद का वर्णन करेंगे।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

शुद्ध मण्ड—शार्ङ्गधरसंहिताकार के मतानुसार 'नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः।' चतुर्दश गुण जल में चावल डालकर पकाने से मण्ड (शुद्ध मण्ड) तैयार होता है। शुद्ध मण्ड के गुणों का उल्लेख शार्ङ्गधरकार ने निम्नलिखित शब्दों में किया है 'शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनो परः॥' अर्थात् (इस मण्ड में) सोंठ और सेंधा नमक मिलाकर पीने से अन्न का पाचन तथा अग्नि का दीपन होता है। शार्ङ्गधरकार ने एक अष्टगुण मण्ड का वर्णन और किया है—'धान्यत्रिकटुसिन्धूत्थमुद्गतण्डुलयोजितः। भृष्टश्च हिंगुतैलाभ्याम स मण्डोऽष्टगुणः स्मृतः॥ दीपनः प्राणदो बस्तिशोधनो रक्तवर्धनः। ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मण्डोऽष्टगुण उच्यते॥ अर्थात् धनियाँ, सोंठ, मरिच, पीपल, सेंधा नमक, मूँग और चावल इनको हींग और तेल से छौंककर भून ले तथा चतुर्दशगुण जल देकर पकावे। इसको अष्टगुण मण्ड कहते हैं। यह दीपन, बलप्रद, बस्तिशोधन, रक्तवर्धन, ज्वरनाशक तथा त्रिदोषनाशक होता है। अष्टगुण मण्ड यह इसलिये कहा जाता है कि इसमें निम्नलिखित आठ गुण होते हैं यथा—'क्षुद्बोधनो बस्तिविशोधनश्च प्राणप्रदो रक्तविवर्धनश्च। ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता वायुं जयेदष्टगुणो हि मण्डः॥'

वाट्यमण्ड—इसके लिए भी उपर्युक्त ग्रन्थकार का निम्नलिखित मत है—'सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमण्डो यवैर्भवेत्॥' (११७ शाङ्गं.सं.म.खं.अ. २) अर्थात् भली प्रकार कूटकर साफ किये हुये यवों (जौ) को भूनकर चौदह गुने जल में पकाया जाय तथा मण्ड तैयार होने पर छान लिया जावे। यह मण्ड वाट्यमण्ड कहलाता है। वाट्यमण्ड के गुणों का वर्णन करते हुए शार्ङ्गधर संहिताकार ने लिखा है—कफपित्तहरो कण्ठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः॥' (यह वाट्यमण्ड पीने से) कफ तथा पित्त को ठीक करता है, कण्ठ के लिए हितकारी है और रक्तपित्त शान्त करता है।

इसी प्रकार जौ (यव) को विना सेंके ही जो मण्ड बनाया जाता है उसे यवमण्ड कहते हैं।

लाजामण्ड—इसके सम्बन्ध में भी शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है—'लाजैर्वा तण्डुलैर्भ्रष्टैर्लाजामण्डः प्रकीर्तितः॥' अर्थात् धान के लावे अथवा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चावलों को भूनकर चौदह गुने जल में पकाकर बनाए हुए मण्ड को लाजामण्ड कहते हैं। इसी प्रकार इसी सम्बन्ध में एक अन्य विद्वान् का भी निम्नलिखित मत है—'लाजैस्तु निर्मितो मण्डो लाजमण्डः प्रकीर्तितः।' अर्थात् धान के लावे (खील) को १४ गुने जल में (लावा सिद्ध जाय इतना) पकाकर स्वच्छ तथा महीन वस्त्र से छानकर जो मण्ड बनाया जाता है उसे लाजमण्ड कहते हैं। उपर्युक्त वाट्य, लाजा तथा शुद्ध मण्ड आदि सब जल में पकाकर तैयार किये जाते हैं इसी कारण कहीं-कहीं इनकी परिभाषा भी क्वाथप्रकरण में लिखी मिलती है। लाजामण्ड के गुणों का वर्णन करते हुए सुश्रुतकार लिखते हैं—'लाजमण्डो विशुद्धानां पथ्यः पाचनदीपनः। वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पलीनागरायुतः॥' (सु. सू. अ. ४६, ३४१) अर्थात् विरेचनादि से शुद्ध हुये मनुष्यों के लिये पिप्पली और सोंठयुक्त लाजामण्ड पथ्यकर, पाचक, अग्निदीपक, वातानुलोमक तथा हृदय को हितकर है। इसी लाजामण्ड के गुणों का उल्लेख शार्ङ्गधरसंहिताकार ने निम्नलिखित प्रकार से किया है—'श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासज्वरजिन्मतः॥' अर्थात् लाजामण्ड कफपित्त के प्रकोप का शामक, ग्राही तथा तृष्णा और ज्वर का नाशक है।

प्रयोगसंख्या १२

शुद्ध मण्ड निर्माण करना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
तण्डुल	१ तो०	जल	१४ तो०	कटोरी, द्रवमापक, खरल, स्वच्छ मृदु वस्त्रखण्ड तथा अंगार प्रकोष्ठिका (अंगीठी)

विधि—तण्डुल को खरल में कूट कर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें तथा पानी में रख कर धीमी आँच से पकावें। जल तण्डुल से १४ गुना हो। तण्डुल के पक जाने पर कटोरी को अंगीठी पर से उतारकर कुछ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ठण्डा होने दें फिर महीन तथा स्वच्छ वस्त्रखण्ड से छान लें। फलस्वरूप दूसरी कटोरी में सफेद वर्ण का गाढ़ा द्रव प्राप्त होगा।

परिणाम—यह प्राप्त गाढ़ा द्रव ही शुद्ध मण्ड है जिसका वर्ण किञ्चित् लाली लिये हुए दूधिया श्वेत वर्ण का होता है।

पेया—पेया के विषय में ऊपर कहा जा चुका है कि जिस यवागू में द्रवभाग अधिक हो और सिक्थ कम हो उसको पेया कहते हैं। इसके विषय में शार्ङ्गधरसंहिताकार का निम्नलिखित मत है—'द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले। सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया···।।' अर्थात् चौदह गुने जल में अन्न देकर पकाने से अधिक पतली और थोड़ी सक्थि (सीठी) वाली पेया कही जाती है। इसी भाव को लेकर एक अन्य विद्वान् ने भी कहा है—'चौदह गुने जल में चावल डालकर खूब पकावे, उसको मण्ड की भाँति छाने नहीं, इस प्रकार वह द्रवसहित भक्तावयवयुक्त पदार्थ पेया है।' भावप्रकाश में भी इसी प्रकार की पेया की परिभाषा मिलती है। यथा—'चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता। द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः।।' शार्ङ्गधर ने पेया के गुणों के विषय में लिखा है—'पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।।' अर्थात् पेया हल्की, मल को रोकनेवाली तथा धातुओं को पुष्ट करती है। तथा सुश्रुतकार का मत है कि—'स्वेदाग्निजननी लघ्वी दीपनी बस्तिशोधनी। क्षुत्तृट्श्रमग्लानिहरी पेया वातानुलोमनी।।' (सु. सू. अ. ४६, ३४२) अर्थात् पेया स्वेदल, अग्निजनक, लघु, दीपन तथा मूत्रविशोधक है; क्षुधा, तृषा, श्रम और ग्लानि को दूर करती है तथा वातानुलोमक है।

विलेपी—विलेपी के विषय में ऊपर कहा जा चुका है—'जिस यवागू में सिक्थ (सीठी) अधिक हो और द्रव भाग कम हो उसको विलेपी कहते हैं।' इसके सम्बन्ध में शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है कि 'विलेपी घनसिक्था स्यात् सिद्धा नीरे चतुर्गुणे।।' अर्थात् चौगुने पानी में अन्न (तण्डुल) डालकर पकाई हुई विलेपी होती है। एक अन्य विद्वान् के मतानुसार 'चौगुने जल में चावल डालकर खूब पकावे; वह अल्प द्रवयुक्त गाढ़ा पदार्थ विलेपी है। भावप्रकाश में भी कहा है:—'चतुर्गुणाम्बुसंसिद्धा विलेपी घन-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सिक्थकाः । पृथग्द्रवेणरहिता ख्याता शिथिलभक्तिका ।।' विलेपी के गुणों के विषय में सुश्रुतकार लिखते हैं : 'विलेपी तर्पणी हृद्या ग्राहिणी बलवर्धनी । पथ्या स्वादुरसा लघ्वी दीपनी क्षुत्तृषापहा । बस्तिसंशोधनी वृष्या ज्वरातीसारयोर्हिता । शाकमांसफलैर्युक्ता यवाग्वस्ताश्च दुर्जराः ।।' (सु. सू. अ. ४६, ३४३-३४४) अर्थात् विलेपी तृप्तिकारक, हृद्य, ग्राही, बलकारक, पथ्यकर, मधुर, हल्की, अग्निदीपक, तृषाशामक, क्षुधा को दूर करने वाली, मूत्रविशोधक (मूत्रल), वृष्य और ज्वर तथा अतिसार में हितकर है । शाक, मांस तथा फलों से बनाई हुई (उपर्युक्त तीनों प्रकार की) यवागू पचने में कठिन होती हैं । शार्ङ्गधरकार भी विलेपी के गुण बताते हुए लिखते हैं : 'बृंहणी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ।।' (यह विलेपी) शरीर को पुष्ट करनेवाली, तृप्तिकारक, हृदय को बल देने वाली, मधुर रसान्वित और पित्तनाशक होती है ।

अन्न (भात) कल्पना—हम ऊपर बतला चुके हैं कि प्राचीन ग्रन्थकारों ने किसी-किसी स्थान पर रोगियों के आहार के साधनों का वर्णन करते हुए अन्न तथा यवागू आदि का वर्णन किया है, यथा—'अन्नं यवागूरित्येवं द्विविधं भक्तसाधनम् । यथोचितं तण्डुलानां साधनं त्वन्नमुच्यते ।।' अर्थात् अन्न और यवागू ये दो प्रकार के रोगियों के आहार के साधन मुख्यतः कहे गये हैं । इनमें से तण्डुलों का यथोचित साधन अन्न कहलाता है, इत्यादि। इसी अन्नकल्पना के विषय में शार्ङ्गधरसंहिताकार लिखते हैं :—'जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलं । विपचेत्स्रावयेन्मण्डं सभक्तो मधुरो लघुः ।।' अर्थात् चार पल चावलों को चौदहगुने जल में पकाया जाय और पक जाने पर माँड़ निकाल दिया जाय । उस प्रस्तुत वस्तु को भात (अन्न) कहा जाता है । यह भात मधुर और हल्का होता है । भात भी दो प्रकार का होता है (१) सुधौत प्रस्रुत (चावल धोकर माँड़ निकाला हुआ) तथा (२) अधौतास्रुत (बिना चावल को धोए हुए ही माँड़ युक्त) । उपर्युक्त दोनों प्रकार के भात में अधौतास्रुत भात पञ्चगुण जल में सिद्ध किया जाता है । यथा 'अधौतास्रुतं अन्नं पञ्चगुणे साध्यम् ।।' तथा सुधौत-प्रस्रुत भात के लिए ही ऊपर लिखा चौदह गुने जल में पाक करने का नियम

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। इन दोनों प्रकार के भातों का वर्णन करते हुए किसी आचार्य ने लिखा है : 'सुधौतप्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्। अधौताप्रस्रुतं शीतं गुरुवृष्यं कफप्रदम् ॥'

प्रयोगसंख्या १३

अन्नकल्पना

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
तण्डुल	१ तो०	जल	५ तो०	कटोरी, अंगीठी

विधि—१ तोला चावल लेकर साफ पानी से धो लें तथा पाँच तोला जल एक कटोरी में रखकर उसमें १ तोला तण्डुल डाल दें और कटोरी को अंगीठी पर रखकर धीमी आँच से पकावें। तण्डुल के पक जाने की परीक्षा के लिए एक तण्डुल-कण को कटोरी से निकालकर हाथ से रगड़कर देखें और जब देखें कि चावल बिल्कुल पक गया है तथा उसमें कनकी भी नहीं रही तो सम्पूर्ण चावल को पका समझकर अंगीठी से उतार लें।

परिणाम—इस प्रकार क्रिया करनें से अन्न नामक वस्तु प्राप्त होगी जो तौलने पर लगभग २॥ तोले होगी।

भावप्रकाशकार ने भात के बनाने की विधि तथा गुणों के विषय में निम्नलिखित श्लोक कहे हैं—'भक्तमन्नं तथाऽन्धश्च क्वचित्कूरम् च कीर्तितम्। ओदनोऽस्त्री स्त्रियांभिस्सा दीदिवः पुंसि भाषितः॥ सुधौतांस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत्। तदुक्तं प्रस्तुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम्॥ भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु। अधौतमस्रुतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम्॥' (भा. प्र. नि. कृतान्न वर्ग ४–६) अर्थात् भात,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अन्न, अंध, कूर, ओदन, भिस्सा, दीदिवि ये भात के संस्कृत नाम हैं। अच्छी तरह से पानी से धोकर चावलों को पाँचगुने जल में पकावे तथा पक जाने पर माँड का भाग निकाल ले। वह भात उष्ण, निर्मल, गुणकारक, अग्निकारक, पथ्य, तृप्तिदायक, रुचिकारक और हल्का होता है। बिना धोये हुए चावलों का भात तथा बिना माँड निकाला हुआ भात भारी, अरुचिकारक और कफवर्धक होता है।

कृशरा—इसे लोकभाषा में खिचड़ी भी कहते हैं। इसे चिकित्साशास्त्र के अनुसार रोगी को हल्के तथा पथ्य भोजन के रूप में दिया जाता है। भावप्रकाशकार का कृशरा के निर्माण तथा गुणों के विषय में निम्नलिखित मत है:—'तण्डुलादालिसंमिश्रा लवणार्द्रकहिंगुभिः। संयुक्ताः सलिले सिद्धाः कृशरा कथिता बुधैः॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्तकफप्रदा। दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भमलमूत्रकरी स्मृता॥' (भा. प्र. निघण्टु कृतान्न वर्ग ९-१०) अर्थात् खिचड़ी, दाल और चावल (समभाग या एक वा दो भाग के निपात से) मिलाकर अच्छी तरह धोकर पाँचगुने जल में पका ले। पक जाने पर नमक, अदरक, हींग ये समुचित मात्रा में डाले। इसे खिचड़ी (कृशरा) कहते हैं। खिचड़ी वीर्यवर्धक, बलदायक, भारी, कफ व पित्त को उत्पन्न करनेवाली, देर से पचनेवाली, बुद्धि, विष्टम्भ, मल तथा मूत्रकारक है।

भात पकाने की विधि का वर्णन पाश्चात्य चिकित्साग्रन्थों में निम्नप्रकार से मिलता है: 'Chawal or Bhat—It is plain boiled rice with the water drained off. This is very common article of diet in india. Mixture of Bhat and milk, or Bhat and Dal Moong is advised in all the diseases where light food is necessary.' तथा उसके गुणों के विषय में यह वर्णन मिलता है: 'As a food, it is poor in protein and fat, but rich in carbohydrates and minerals; its poverty in nitrogen makes it a badly balanced food, when consumed alone, the starch being out of proportion to

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

the other principles. The carbohydrates consists chiefly of starch, the sugar and dextrin only amounting to about 1·25%, about 0·4% being sugar. When cooked alone it is best steamed; for lf boiled, a portion of the already small quantity of protein and saline matter is lost. It is a valueable and nutritious food, easy of digestion and of great value in illness. The caloric value of boiled rice is 525 while of uncooked is 1630.'

(Medical Guide for India and Index of Treatment by Omera E. J. 4th edition P. P. 451.)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हिमकषायादिकल्पनाऽध्याय

शीतकषाय (हिम) कल्पना

शीत या हिमकषाय शीतवीर्य तथा सुगन्धित औषधद्रव्यों से बनाया जाता है तथा इस कषाय का प्रयोग विशेषकर पित्तप्रशमन के लिये किया जाता है। शीतकषाय की परिभाषा किसी आचार्य ने इस प्रकार लिखी है:—'क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्जलपलैः प्लुतम्। शर्वरीमुषितं सम्यक् ज्ञेयः शीतकषायकः ॥' अर्थात् कूटा हुआ द्रव्य एक पल लेवें, उसमें छः पल जल मिलाकर रात भर रखा रहने दें तथा प्रातःकाल उसी को मसल कर महीन तथा स्वच्छ वस्त्र की सहायता से छान लें। इस प्रकार क्रिया करने से शीतकषाय तैयार हो जाता है। एक अन्य विद्वान् हिम के विषय में निम्न लिखित परिभाषा का वर्णन करते हैं—'द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात्। कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ॥' अर्थात् २ तोले औषधद्रव्य के चूर्ण को १२ तोले गरम जल में मिलाकर, मिट्टी या काँच के पात्र में ढँककर रातभर रखा रहने दिया जाय। तत्पश्चात् प्रातःकाल हाथ से मसलकर तथा कपड़े से छानकर उसकी ४-४ तोले की मात्रा तीन बार पीने को दी जाय। इसको शीत या हिमकषाय कहते हैं। तथा 'द्रव्यं अर्धपलं क्षुण्णं त्रिभिर्नीर-पलैः प्लुतम्। निशोषितं हिमः स स्यात्तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ सिता-मधुगुडानत्र क्वाथवत् प्रक्षिपेद्भिषक् ॥' यदि शीतकषाय में मिश्री, शहद (मधु) या गुड़ मिलाने के लिये आदेश मिलता हो तो क्वाथ में मिले प्रमाण के अनुसार मिलावे। शार्ङ्गधरसंहिताकार भी इसी विषय पर निम्नलिखित परिभाषा देते हैं—'क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्। निशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥ तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥' (शा० सं० म० खं० अ० ४।१) अर्थात् एक पल कूटे हुए द्रव्य को ६ पल जल में भिंगोकर मृत्पात्र में रातभर रहने दें और प्रातःकाल छानकर उपयोग में लें। इस प्राप्त वस्तु को हिम या शीतकषाय कहते हैं। इसकी मात्रा फाण्ट के समान (दो पल की) समझनी चाहिये। तथा इस प्रकार का निश्चय सर्वत्र ही प्रयोज्य मानना चाहिये। चरककार

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

की हिमकषायविषयक परिभाषा बड़ी ही सरल तथा स्पष्ट है। वे लिखते हैं— 'द्रव्यादापोथितात्तोये तत्पुनर्निशि संस्थितात्। कषायो योऽभिनिर्याति स हिम इति प्रकीर्तितः ॥' अर्थात् कुट्टित द्रव्य को शीतल जल में रातभर पड़ा रहने देने के बाद जब उसका सारभाग जल में मिल जाता है तब उस सारभागयुक्त जल को उस द्रव्य का शीत कहते हैं। हिम या शीत कषाय की मात्रा आठ तोले की होती है।

हिम अथवा शीतकषाय को यूनानी वैद्यक में खिसान्दह् या खिसांदा अथवा जुलाल कहा जाता है। जुलाल भी शीतकषाय का ही एक भेद है। इसमें शीतल जल या अर्क में औषधद्रव्यों को भिगोकर बिना मसले ऊपर का निथरा हुआ जल ही लेकर औषधार्थ तथा रोगी के पानार्थ प्रयुक्त करते हैं।

अंग्रेजी भाषा में शीतकषाय के लिये इन्फ्यूजन (Infusion) शब्द व्यवहार में आता है। फाण्ट नामक कषाय के लिये भी यही संज्ञा प्रयुक्त होती है अतः कहीं-कहीं पर शीत या हिमकषाय के लिये कोल्ड इन्फ्यूजन (Cold infusion) शब्द भी व्यवहृत होता है। पाश्चात्य वैद्यक की भैषज्य-कल्पना (Pharmacy) ग्रन्थों में इसके लिये मैसेरेशन (Maceration) शब्द व्यवहृत किया गया है। यथा 'Maceration is the process of steeping a substance in alcohol, or some similar menstruum without the application of heat in order to dissolve out its soluble matters. The insoluble residue is called the marc. (Mat. Med. by. B. N. Ghosh. 17th ed. P. P. 8) अर्थात् मेसरेशन (आक्लेदन, भिगोना, हिम व फाण्ट कल्पना) वह प्रक्रिया है जिसमें किसी औद्भिद द्रव्य को सुरासार (अल्कोहल) या अन्य किसी विलायक (Solvent) द्रव्य में निश्चित काल तक भिगोया जाता है। जिससे उसके विलेयांश उस द्रव्य में आ जायँ (विलीन हो जायँ) इसके लिये ढक्कनदार पात्रों को प्रयोग में लाना चाहिये। ताकि वाष्पीभवन के द्वारा विलायक द्रव (Menstruum) की मात्रा कम हो जाने के कारण निष्कर्षण की क्रिया (Extraction) के होने में किसी प्रकार की

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

बाधा न पड़े। यदि औषध का हिमकषाय अल्प मात्रा में ही बनाना हो तो चौड़े मुख की शीशी अथवा ढक्कनदार मिट्टी के जार (पात्रविशेष) (Earthen ware jar) का प्रयोग किया जा सकता है। उपर्युक्त पात्र में सम्पूर्ण विलायक भरकर औषध उसमें घुला दी जाती है तथा ढक्कन बन्द कर दिया जाता है। औषध को समूचा जवकुट (स्थूल पिष्ट) करके विलायक द्रव में घुलाया अथवा मिलाया जाता है। इस कार्य के लिये औषध के सूक्ष्म चूर्ण का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उसे सात दिन तक या जिस प्रकार के कषाय के लिये जितना समय अपेक्षित हो उतने समय पर्यन्त उसी प्रकार छोड़ देते हैं। किन्तु बीच-बीच में कभी-कभी पात्र को हिला देना चाहिये। उक्त अवधि या समय पूर्ण हो चुकने पर द्रव को निथारकर सीठी या फोंक (Marc) को भी निचोड़ लेते हैं। अब दोनों द्रवों को एक में मिलाकर थोड़ी देर छोड़ देते हैं ताकि कणादि नीचे तल में बैठ जायँ। उसके उपरान्त स्वच्छ निष्कर्ष द्रव को निथार लिया जाता है। यदि विशेष शीघ्रता करनी हो तो उसे छानकर भी स्वच्छ किया जा सकता है, उसे तलस्थित होने के लिये रखे जाने की आवश्यकता नहीं।

उपर्युक्त हिमकषाय का निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये—

१—हिमकषाय बनाने के लिये औषधि का सूक्ष्म चूर्ण नहीं लेना चाहिये।

२—हिमकषाय को बनाने के हेतु यथासम्भव परिस्रुत जल का ही प्रयोग करना चाहिये।

३—हिमकषायनिर्माण के समय जिस द्रव्य का हिमकषाय बनाना है उसका जल में निलम्बन (Suspension) होना आवश्यक है। इसके लिये यदि हो सके तो स्वच्छ महीन वस्त्र (मलमल) के टुकड़े में औषध की पोटली बनाकर ढक्कन के नीचे से पात्र में जल के भीतर डूबता हुआ लटका देना चाहिये या फिर क्रियासौकर्य के हेतु एक विशेष पात्र का भी प्रयोग किया जाता है जिसको स्क्वॉयर या मॉज का हिमकषाय अथवा फाण्टपात्र (Infusion pot) कहते हैं।

४—हिमकषायनिर्माण के लिये जल शीतल ही होना चाहिये।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

५—यदि स्रोत या झरने के कठिन जल (Hard water) में हिम-कषाय तैयार किया जाय तो उसमें अच्छा रंग नहीं उतरता क्योंकि कठिन भेषज के निस्सार्य तत्त्व (Extractive matters) अच्छी तरह जल में नहीं घुलते अतः जल भी मृदु प्रकार का (Soft water) ही ग्रहण करना चाहिये।

६—जब भी हिमकषाय का निर्माण करना हो तो तत्काल उसका निर्माण करके ताज़े ही रूप में उसका प्रयोग करना चाहिये।

प्रयोगसंख्या १४

वासा-हिमकषाय-निर्माण

द्रव्यनाम	मान	सहायक द्रव्य	मान	उपकरण
वासात्वक् (छाल)	१ पल	जल	६ पल	खरल, स्वच्छ महीन वस्त्र, ढक्कन-दार कटोरी, एक साधारण कटोरी।

विधि—वासा की शुष्क छाल को लेकर उसे धो-पोंछकर साफ करें फिर लोहे के खरल में डालकर उसका जवकुट चूर्ण बनावें। फिर इस चूर्ण को एक ढक्कनदार कटोरी में डालकर तथा उसमें छः पल स्वच्छ, शुद्ध, परिस्रुत जल मिलाकर एक ठण्ढे स्थान पर रख दें और पूरे एक दिन या एक रात रखा रहने दें। इतने समय में वासा त्वक् का सक्रिय औषधांश पानी में उतर आयगा। दूसरे दिन प्रातःकाल उस कटोरी को खोलकर पहले तो पानी छान लें फिर एक महीन कपड़े में औषधद्रव्य के सीझे हुए कल्क को भी रखकर निचोड़ लें और प्राप्त हिमकषाय के जल में मिला दें।

परिणाम—इस प्रकार क्रिया करने से वासात्वक् का हिमकषाय प्राप्त होगा जो तौल में लगभग छः पल होगा।

हिमकषाय के कुछ प्रसिद्ध योग—उनके गुण तथा प्रयोग

(१) आम्रादिहिम—'आम्रजम्बू च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत्। हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित्॥' अर्थात् आम, जामुन और

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अर्जुन की छाल का एक पल चूर्ण बनाकर छः पल जल में शाम को भिंगो दें और प्रातःकाल छानकर उसका हिम मधु के साथ पीवें। यह हिमकषाय रक्त-पित्त को नष्ट करता है।

(२) मरिचादिहिम—मरिचं मधुयष्टी च काकोदुम्बरपल्लवाः। नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः ॥' अर्थात् काली मिर्च, मुलेठी, कठगूलर (कटूमर) के नये पत्ते और नीलकमल (नीलोफर) इनका हिम बनाकर पीने से प्यास और वमन शान्त होते हैं।

(३) नीलोत्पलादिहिम—'नीलोत्पलं बला द्राक्षा मधूकं मधुकं तथा। उशीरं पद्मकं चैव काश्मरी च परूषकम् ॥ एष शीतकषायश्च वातपित्त-ज्वराञ्जयेत्। सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ॥' अर्थात् नील-कमल (नीलोफर), वला (खरेंटी), दाख (द्राक्षा, मुनक्का) महुआ, मुलेठी, खस, पद्माख, गंभारी और फालसा इनका हिम वनाकर पीने से वातपित्त-ज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा, प्यास आदि विकार नष्ट होते हैं।

(४) वासाहिम—'वासायाश्च हिमः कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥' अर्थात् अडूसे (वासा) का हिम पीने से खाँसी, रक्तपित्त तथा ज्वर आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

(५) अमृताहिम—'अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ॥' अर्थात् गिलोय का हिम पीने से जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है।

(६) धान्याकहिम—'प्रातः सशर्करः पेयो हिमो धान्याकसम्भवः। अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ॥' अर्थात् धनियाँ का हिम शक्कर मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिये। यह हिम अन्तर्दाह और पिपासा को दूर करता है तथा (मूत्र आदि के) स्रोतों को शुद्ध करता है।

(७) धान्याकादिहिम—'धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः। रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णाशोषं च नाशयेत् ॥' अर्थात् धनियाँ, आँवला, अडूसा, मुनक्का और पित्तपापड़ा का हिम रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृष्णा और मुखशोष को नष्ट करता है। इसमें भी उपर्युक्त धान्याकहिम की भाँति ही शर्करा मिला ली जानी चाहिए।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मन्थनिर्माण (मन्थकल्पना)—मन्थ का वर्णन शार्ङ्गधरसंहिताकार ने फाण्ट-प्रकरण में किया है किन्तु यह ठण्ढे जल से ही बनाया जाता है इसीलिये यह उचित समझा गया कि इसका वर्णन भी शीतकषाय के वर्णन के अन्तर्गत ही समाविष्ट कर दिया जाय। शार्ङ्गधरसंहिताकार ने मन्थ को फाण्ट का भेद लिखा है, यथा—'मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात्।' फाण्ट के निर्माण में गरम पानी का प्रयोग किया जाता है जबकि मन्थ-कल्पना में शीतल जल का प्रयोग होता है। केवल यही अन्तर मन्थ तथा फाण्ट की कल्पना में है। अस्तु, मन्थकल्पना के विषय में निम्नलिखित परिभाषा आयुर्वेदीय ग्रंथों में मिलती है—'जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपले क्षिपेत्। मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥' अर्थात् चार पल शीतल जल में एक पल कुटा हुआ द्रव्य डालकर उसे मिट्टी के पात्र में अच्छी तरह मथा जाय और छानकर दो पल की मात्रा में पिया जाय। इस प्रकार कुटे हुए चार तोले औषधद्रव्य को किसी स्वच्छ मिट्टी के बरतन में डालकर उसमें सोलह तोले ठंडा जल मिलाकर मथानी की सहायता से भली प्रकार मथकर स्वच्छ महीन वस्त्र से छान ले। इस प्रकार तैयार हुए मन्थ नामक कल्प को आठ तोले की मात्रा में दिन में दो बार पिलावें। उपर्युक्त मन्थविषयक परिभाषा शार्ङ्गधरसंहिताकार के अनुसार है। अन्य किसी आयुर्वेदीय ग्रंथ में उक्त प्रकार की परिभाषा दृष्टिगोचर नहीं होती किन्तु सुश्रुतकार के अनुसार मन्थ की निम्नलिखित परिभाषा है—'सक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः। नात्यच्छा नातिसान्द्रा वा मन्थ इत्यभिधीयते ॥' (सु. सू. अ. ४६) अर्थात् सत्तू को थोड़े घी में मसलकर तथा ठंडे जल में मिलाकर पिलावें। इस प्रकार का कल्प मन्थ कहा जाता है। मन्थ-कल्पना के लिये सत्तू तथा जल का इतना प्रमाण हो कि मन्थ न अधिक पतला होने पावे और न अधिक गाढा ही बने। इसी प्रकार मन्थ में यदि चीनी, मधु या गुड़ आदि मधुर द्रव्य मिलाना हो तो क्वाथ में लिखे हुए प्रमाण के अनुसार ही पीने वाले की रुचि के अनुसार मिलाना चाहिये।

मन्थ के कुछ प्रसिद्ध योग तथा उनके गुण व प्रयोग

(१) खर्जूरादिमन्थ—'खर्जूरदाडिमीद्राक्षातिन्तडीकाम्लिकामलैः। स-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत् ।' अर्थात् खजूर, अनारदाना, मुनक्का, तिन्तडीक, इमली, आँवला तथा फालसा इनका मन्थ बनाकर पीने से सब प्रकार के मद्यविकार नष्ट होते हैं।

(२) मसूरादिमन्थ—'क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमाम्भसा। मथिता वारयन्त्याशु छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ॥' मसूर को भुनाकर उसका सत्तू बनावे और उसको अनार का रस मिलाकर मथ लेवे। इस मन्थ को पीने से वात, पित्त तथा कफ से उत्पन्न छर्दि आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

(३) यवसक्तुमन्थ—'प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः। नातिसान्द्रद्रवो मन्थस्तृष्णादाहास्रपित्तहा ॥' अर्थात् जौ के सत्तू को घी मिलाकर ठण्डे पानी में घोलकर मन्थ बना लें। यह न विशेष गाढ़ा हो और न विशेष पतला। इस यवमन्थ नामक कल्प को पीने से दाह और रक्तपित्त नामक रोग नष्ट होते हैं।

मन्थ के शास्त्रोक्त गुण—मन्थ के गुणों का वर्णन करते हुए सुश्रुतकार लिखते हैं—'मन्थः सद्योबलकरः पिपासाश्रमनाशनः। साम्लस्नेहगुडो मूत्रकृच्छ्रोदावर्तनाशनः॥ शर्करेक्षुरसद्राक्षायुक्तः पित्तकारनुत्। द्राक्षामधूकसंयुक्तः कफरोगनिबर्हणः॥ वर्गत्रयेणोपहितो मलदोषानुलोमनः॥' (सू. सु. अ. ४६।३८५-३८७) अर्थात् मन्थ तुरन्त बल देने वाला एवं तृषा और श्रम का नाश करने वाला है। खटाई, स्नेह और गुड़युक्त मन्थ मूत्रकृच्छ्र और उदावर्त का नाशक है। शर्करा, गन्ने का रस और अंगूरयुक्त मन्थ कफ, पित्तविकार का नाशक है। द्राचा और महुआ से युक्त मन्थ कफरोगनाशक है। उपर्युक्त तीनों वर्गों के पदार्थों से युक्त मन्थ मल और दोष (विशेष करके वात) आदि का अनुलोम करने वाला है।

तण्डुलोदक-कल्पना—पीछे स्वरस-प्रकरण में तण्डुलोदक का वर्णन किया गया है। किन्तु कुछ विद्वानों के मतानुसार तण्डुलोदक का वर्णन हिमकषाय प्रकरण के साथ किया जाना चाहिये क्योंकि तण्डुलोदक चावल को ठण्डे पानी में भिगोकर बनाया जाता है अतः उन विद्वानों के मत को भी मानकर यहाँ संक्षेप में तण्डुलोदक का वर्णन कर देना उचित होगा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तण्डुलोदक की परिभाषा लिखते हुये शार्ङ्गधरसंहिताकार का मत है—'कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं तण्डुलोदकमुच्यते ॥' अर्थात् ४ तोले चावल को जल से धोकर मिट्टी के बर्तन में ८ गुने जल में ३-६ घण्टा भिगोकर छान ले। इसे तण्डुलोदक कहते हैं। एक अन्य ग्रन्थकार की तण्डुलोदक-विषयक परिभाषा इस प्रकार है कि 'तण्डुलं कणशः कृत्वा पलं ग्राह्यं हि तण्डुलात्। चतुर्गुणं जलं देयं तण्डुलोदककर्मणि ॥' जवकुट किए हुए एक पल चावल लेकर उसको चार गुने जल अर्थात् (४ पल जल) में डालकर भिगोकर रख दें। कुछ घण्टे बाद उन चावलों को मसलकर महीन तथा स्वच्छ वस्त्र की सहायता से छान लें। यही तण्डुलोदक है। इस प्रकार इन ग्रन्थकार के मतानुसार तण्डुलोदक-निर्माण में तण्डुल से चारगुना जल लेने का विधान है जबकि शार्ङ्गधरसंहिताकार चावल से आठगुना जल लेने के लिये आदेश देते हैं। इतना ही नहीं, अन्य विद्वानों का मत है कि 'शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ॥' शीतकषाय के अनुसार याने ६ गुना जल डालकर रातभर भिगोकर मसलकर छान लेना ही तण्डुलोदक-कल्पना की विधि है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तण्डुलोदक-कल्पना में भी कई मत-मतान्तर हैं तथा यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किस आचार्य का मत मान्य हो सकता है। अतः अवस्था, काल, रोगी का बलाबल जानकर तथा युक्ति व तर्क के अनुसार निश्चय करके चिकित्सक जिस प्रकार का चतुर्गुण, षट्गुण अथवा अष्टगुण जलसाध्य तण्डुलोदक-कल्पना रोगी के हित में अथवा अनुपान की दृष्टि से उचित समझे वैसा ही आदेश देकर तण्डुलोदक बनवाकर प्रयोग करावे। किन्तु इतना तो भली प्रकार समझा ही जा सकता है कि अष्टगुण जल सिद्ध तण्डुलोदक सबसे कम बलवाला, शीतलगुणप्रधान तथा दुर्बल रोगी के लिये अधिक हितकर होगा तथा चतुर्गुण जलसिद्ध तण्डुलोदक तीनों प्रकार के तण्डुलोदकों से अधिक गुणोंवाला, अधिक शक्तिसम्पन्न तथा अपेक्षाकृत अधिक गुरु होगा।

यूनानी वैद्यक में तण्डुलोदक 'आबबिरञ्ज' नाम से प्रयुक्त किया जाता है।

पानक-कल्पना—पानक ठण्डे जल में फलों को मिलाकर बनाया जाता

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

है। इसीलिये पानक के विषय में विवेचना का समावेश शीतकषाय-कल्पना के प्रकरण के अन्तर्गत ही किया जाता है। पानक की परिभाषा लिखते हुए आचार्य ने कहा है—'फलमम्लं जले स्विन्नं शीताम्बुपरिमर्दितम्। सितामरिचसम्मिश्रं पूतं स्यात् पानकं वरम्।' अर्थात् आम, फालसा, इमली आदि के अधपके फलों को जल में कुछ सिझाकर, १६ गुने ठण्डे जल में हाथ से खूब मसलकर महीन तथा साफ कपड़े के चौकोर टुकड़े से छान लें। तत्पश्चात् उसमें पीनेवाले की रुचि के अनुसार मिश्री और कालीमिर्च का चूर्ण मिलावें। इस प्रकार सिद्ध की गई कल्पना को पानक कहा जाता है। पानक में इलायची तथा लौंग का चूर्ण और जल में पीसा हुआ केशर भी मिलाते हैं। प्रचलित लोकभाषा में इसे 'पना' या 'पन्ना' भी कहते हैं जो कि शुद्ध शास्त्रीय तथा संस्कृत शब्द पानक का अपभ्रंश रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पानक को यूनानी वैद्यक में 'शर्बत' कहते हैं जो अरबी भाषा से लिया गया है।

शार्कर-कल्पना—शार्कर नामक कल्पना को यूनानी वैद्यक में शर्बत कहा जाता है जो कि अरबी भाषा का शब्द है। अंग्रेजी भाषा में तथा पाश्चात्य वैद्यक में इसको सिरपस् (Syrup or Syrupus) संज्ञा दी गयी है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में शार्कर कल्पना के लिये निम्नलिखित परिभाषा प्राप्त होती है—'हिमे फाण्टे शृतेऽर्के वा शर्करां द्विगुणां क्षिपेत्। मन्देऽग्नौ साधितं पूतं पटात्तच्छार्करं स्मृतम्॥' अर्थात् गुलाब, केवड़ा, वेदमुश्क आदि सुगन्धित द्रव्यों के अर्क में और अन्य द्रव्यों के हिम, फाण्ट या क्वाथ में (तथा अनार, नीबू आदि फलों के रस में) दुगुनी मात्रा में चीनी (शक्कर) मिलाकर मन्दी आँच पर पकाकर ठण्डा होने पर कपड़े से छान ले। इस कल्पना को ही शार्कर (शर्बत) कहा जाता है। शार्कर की चासनी शहद के समान बनानी चाहिये। फलों के रसों तथा सुगन्धित द्रव्यों के अर्कों को चीनी ठण्डी होने पर जम जाय इस प्रकार की चाशनी बनाकर उनमें मिलाने पर शार्कर या शर्बत अच्छा बनता है।

शार्कर अथवा सिरप (Syrup) के विषय पाश्चात्य वैद्यक के 'द्रव्यगुण' ग्रन्थों में निम्नलिखित परिभाषा प्राप्त होती है—'Syrupi—Syrups are fluids preparations of drugs containig a sufficient quantity of sucrose, either to preserve them or to make

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

their administration more agreeable. The dose of all syrups is from 30 to 120 ms. except that of squill and Easton's syrup which are given in 30-60 ms. If the concentration of sucrose is less than that in simple Syrup, the syrup may undergo fermentation unless some preservative is added. They are twelve in number. ie 1. Syrup simplex, 2. Syrup Aurantii 3. Syrup Ferri Iodidi. 4. Syrup Ferri Phoshphatis. Co. 5. Syrup Ferri Phosphatis cum quinine et strychnine. 6. Syrup glucosi liquid. 7. Syrup limonis. 8. Syrup Pruni-serotinae 9. Syrup scillae. 10 Syrup Sennae. 11. Syrup tolutans 12. Syrup Zingiberis. (Mat. Med. by B. N. Ghosh. 17th ed. P. P. 31-32)

उपर्युक्त अंग्रेजी गद्यांश का भाव यह है कि शार्कर (शर्बत) अथवा सिरप (Syrup) एक मधुर तथा सुस्वादु प्रवाही कल्प (Fluid preparation) होता है जिसकी औषधों में चीनी मिलाकर फाणित(चाशनी)कर कल्पना की जाती है। शार्कर-कल्पना में शर्करा मिलाने से दो लाभ होते हैं—एक तो औषध सुस्वादु तथा दूसरे टिकाऊ हो जाती है (बहुत काल-पर्य्यन्त रखी जा सकती है)। चाशनी नरम रहने से शर्बत बिगड़ जा सकता है। पाश्चात्य वैद्यक में निम्नलिखित बारह शार्कर कल्पनाओं की गणना की जाती है—यथा (१) सिरप सिम्प्लेक्स, (२) सिरप आरन्शियाई, (३) सिरप फेरी इओडिटी, (४) सिरप फैरीफास्फेटिस को०, (५) सिरप फेरी फास्फेटिस कम्र क्विनाइन एट स्ट्रेचनाइन, (६) सिरप ग्लूकोजाई, (७) सिरप लाईमोनिस, (८) सिरप प्रूनियाई सिरोटिनाई, (९) सिरप सिल्ली, (१०) सिरप सेन्नी, (११) सिरप टोलूटेनस, (१२) सिरप जिंजीबेरिस आदि।

उपर्युक्त शार्करों का प्रयोग औषध-मिश्रण को सुस्वादु तथा ग्राह्य बनाने के लिये किया जाता है।

अर्क-कल्पना—अर्क-कल्पना के लिये भी उपर्युक्त शार्कर-कल्पना के प्रसङ्ग में कही गई परिभाषा लागू होती है। अर्क-कल्पना के लिये गुलाब,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

केवड़ा, वेदमुश्क आदि सुगन्धित पुष्प तथा खस, सौंफ, चन्दन, अनन्तमूल आदि का सुगन्धित तैल (इत्र) लिया जा सकता है क्योंकि उन वस्तुओं का प्रधान गुण उनके इत्र में भी रहता है। उनका क्वाथ बनाने से उनका सक्रिय अंश तथा उड़नशील तैल (इत्र) वाष्प के साथ उड़ जाने से क्वाथ में उनके गुण नहीं आते अतः उनका स्वरस, फाण्ट अथवा हिम बनाकर देने का आयुर्वेद में आदेश पाया जाता है। यूनानी वैद्यक के चिकित्सकगण (हकीम) उनसे अर्क निकालते हैं। वस्तुतः यह कल्पना अच्छी तथा उपादेय है। क्योंकि फाण्ट तथा हिमकषाय भी अधिक समय तक नहीं टिक सकता किन्तु अर्क अधिक समय तक टिक सकता है।

विधि—जिन औषध अथवा सुगन्धित द्रव्यों का अर्क प्राप्त करना है यदि वे ताजे तथा आर्द्र हों तो उसी रूप में तथा यदि सूखे हों तो उनका यवकुट (दरदरा चूर्ण) करके रात्रि में दसगुने जल में भिंगो दें। प्रातःकाल उसको भपके में डालकर भपके के दोनों पात्रों की सन्धि में अच्छी तरह कपड़-मिट्टी कर अग्नि पर चढ़ा दें। भपके के ऊपर के पात्र में जल जैसे-जैसे गरम होता जाय वैसे उसे निकालकर दूसरा ठण्डा जल उस पात्र में छोड़ते रहें। अर्क प्राप्त करने के हेतु जितना जल औषध-द्रव्य या सुगन्धि-द्रव्य के साथ में मिला हो उससे आधी मात्रा में अर्क खींचना चाहिये। अन्त में सम्पूर्ण प्राप्त अर्क को महीन तथा स्वच्छ वस्त्रखण्ड से छानकर साफ शीशियों में भरकर कार्क लगाकर बन्द करके रख दें। इस प्रकार क्रिया करने से अर्क प्राप्त होता है किन्तु भपके के विषय में एक वात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि भबका ताँबे (ताम्र) अथवा पीतल का बना होना चाहिये तथा उसमें भीतर की ओर अच्छी तरह कलई की हुई होनी चाहिये। ऐसा न होने से अर्क में किसी भी प्रकार का धातुजन्य रासायनिक अवगुण आ सकता है अतः उपर्युक्त कल्पना में अधिक सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता होती है।

अर्क को अंग्रेजी भाषा में डिस्टिल्ड वाटर (Distilled water), लैटिन भाषा में अक्वा या एक्वा (Aqua) कहते हैं। इसकी परिभाषा पाश्चात्य वैद्यक के द्रव्य-गुण ग्रन्थों में इस प्रकार दी हुई है : 'Aquae. waters–with the exceptions of distilled water, sterlised water and chloroform water, all aquae are weak and simple solutions of

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

volatile oils obtained as described under aromatic waters. They are nine in number. 1. Aqua Anethae conc. 2. Aqua Anethae Distillata. 3. Aqua Camphora. 4. Aqua Chloroformi 5. Aqua Cinnamomi conc. 6. Aqua Cinnamomi distillata. 7. Aqua Distillata. 8. Aqua Menthae. pip. conc. 9. Aqua Menthae. pip. Dist.

Aqua Aromaticae—Aromatic waters are prepared either by (a) Distillation. (b) Solution, ie. by shaking the essential oil with five hundred times its volume of distilled water for fifteen minutes and filtering after twelve hours; or by triturating the oil with powdered talc, keiselguhr or pulped filter paper and five hundred times its volume of distilled water, and filtering; or (c) by diluting the concentrated water with 39 times its volume of distilled water.

N. B.—Concentrated aromatic waters are weak alcoholic solutions of volatile oils which when diluted with 39 times its volume of distilled water yield a preperation which is approximately equivalent to distilled aromatic water in strength but contains about 1.5% V/V of alcohol (90%).

Aquae Sterilisate—(Sterilised water)-Distil potable water from a glass still or a still in which the distillate does not come in contact with copper, which has been cleansed immediately before distillation. Reject the first proportion and collect in a sterilised neutral glass container close the container to exclude bacteria and immediately sterilise by heating in an autoclave.' (Mat. Med. by B. N. Ghosh. 17th Ed. P. P. 14,15).

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपर्युक्त अँग्रेजी गद्यांश का भाव यह है कि एक्वा, वाटर्स, अर्क, परिस्रुत जल, विशोधित जल (Sterilised water), जिसका प्रयोग इंजेक्शन (सूचीवेध) के लिये होता है तथा एक्वा क्लोरोफार्म को छोड़कर प्रायः अन्य सभी जल व अर्क उड़नशील तैलों के साधारण विलयन (घोल) होते हैं। इन जलों या अर्कों की संख्या नौ है। १. एक्वा एनीथी कन्सेण्ट्रेटेड। २. एक्वा एनीथी डिस्टीलेटा। ३. एक्वा कैम्फोरा। ४. एक्वा क्लोरोफार्मी। ५. एक्वा सिन्नामोमाई कन्सेण्ट्रेटेड। ६. एक्वा सिन्नामोमी डिस्टीलेटा। ७. एक्वा डिस्टीलेटा। ८. एक्वा मेंथी पिप कन्सेट्रेण्टेड। ९. एक्वा मेंथी पिप डिस्टीलेटा।

सौगन्धिक जल अथवा एरोमेटिक वाटर्स—सौगन्धिक सुरभित जल-निर्माण निम्न पद्धतियों से किया जाता है—१. परिस्रवण (Distillation)। २. विलीनीकरण (Solution) इसके लिये उड़नशील तैल तथा उसके ५०० गुना आयतन के बराबर परिस्रुत जल लेकर किसी पात्र में रखकर पन्द्रह दिन तक हिलाते हैं जिससे वह भली-प्रकार जल में विलीन हो जाय। बारह घण्टों के बाद उसे छान लेते हैं, अथवा तैल को वटिकाचूर्ण (Powderd talc) कीसलगर मृत्तिका (Keiselguhr) या गूदीयुक्त फिल्टर-पेपर (Pulped Filter Paper) तथा ५०० गुना परिस्रुत जल में मिलाकर परिपेषण (Trituration) करते हैं। तदनन्तर द्रव को छान लेते हैं अथवा ३. संकेन्द्रिता (Concentrated) या तीव्र सुरभित जल में ३९ गुना परिस्रुत जल मिलाकर भी बनाते हैं।

टिप्पणी—प्रायः सभी संकेन्द्रित सुरभित जल, उड़नशील तैलों के सुरासार-घटित (अलकोहोलिक) विलयन होते हैं जिनमें ३९ गुना परिस्रुत जल मिलाने से परिस्रुत सौगन्धिक जल (Distilled aromatic water) की भाँति सुरभित जल प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राप्त सुरभित जल में आयतन (V/V) से १½% अलकोहल ९०% होता है। विशोधित जल—अर्थात् सूचिकाभरणोपयुक्त जल—इसके लिये जल को शीशे के भपके (Still) या उसके अभाव में अन्य कलईदार भपके द्वारा परिस्रुत करके विशोधित शीशियों में भरकर उनका मुख बन्द कर दिया जाता है। इन शीशियों को पुनः कन्दुक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

(Autoclave) में रखकर उष्णता-द्वारा विशोधित (Sterilise) किया जाता है।

वाटर्स अर्थात् अर्क या जल निर्माण करने की विधि—१. कैंफर वाटर अर्थात् कर्पूर-जल या अर्ककपूर—२ औंस जल में $\frac{1}{2}$ ग्रेन कपूर मिलाने से कैम्फरवाटर बनता है। इसके बनाने की सुगम विधि यह है कि कर्पूरपुष्प (Flowers of camphor) को शीशे के स्थूल चूर्ण (Coarsely powdered glass) के साथ मिलाकर मलमल के टुकड़े में पोटली बनाकर उसको तागे से बाँध दें तथा इस पोटली को काग में बाँधकर बोतल के अन्दर जल में लटका दें। दिन में तीन-चार वार इस पोटली को ऊपर-नीचे हिलाने से कर्पूर सरलता से जल में विलीन हो जाता है।

यदि तत्काल कर्पूरजल का निर्माण करना हो तो निम्न प्रकार से तैयार किया जा सकता है—४० औंस जल में १०० बूँद के अनुपात से सिपरिट आफ कैम्फर (Spirit of camphor) मिलावें। बस कैम्फर वाटर या कर्पूरजल तैयार हो जायगा।

(२) क्लोरोफार्म-जल निर्माण करने की विधि—इसके लिये जल में क्लोरोफार्म मिलाकर खूब हिलावें। बस ऐसा करने से क्लोरोफार्म जल तैयार हो जायगा।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

फाण्टकषायादिकल्पनाऽध्याय

फाण्टकषाय-कल्पना

फाण्ट-कल्पना के विषय में आयुर्वेदीय ग्रन्थों में निम्नलिखित परिभाषायें प्राप्त होती हैं—'क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग् जलमुष्णं विनिक्षिपेत्। पात्रे चतुःपलमितं ततस्तु स्रावयेज्जलम् ॥ सोऽयं पूतो द्रवः फाण्टो भिषग्भिरभिधीयते।' अर्थात् कुटा हुआ द्रव्य एक पल की मात्रा में लेकर पात्र में रखकर उसमें चार पल गरम जल मिला दें। जब सम्पूर्ण द्रव्य गरम होकर सिझ जाय तो एक महीन तथा स्वच्छ वस्त्र की सहायता से छान लें। इस छने हुए जलविशेष को वैद्यगण फाण्टकषाय नाम से पुकारते हैं। आचार्य विश्वामित्र ने भी फाण्ट की परिभाषा का निरूपण करते हुए कहा है—'षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिलात् शीतफाण्टयोः। आप्लुतं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ॥' अर्थात् ६ पल अथवा चार पल जल में एक पल दवा डालकर विधिपूर्वक तैयार करने से क्रमशः शीत तथा फाण्ट बनते हैं। यदि स्वरस की जगह इनसे काम लेना हो तो दवा दो पल डालनी चाहिये। चरककार भी फाण्टकषाय की परिभाषा लिखते हुए आदेश देते हैं—'क्षिप्त्वोष्णतोये मृदितं तत् फाण्टमभिधीयते ॥' (च० सू० अ० ४।१०) अर्थात् कुट्टित द्रव्य को उष्ण जल में डालकर हाथ द्वारा मर्दन करने से जब उस द्रव्य का सारभाग जल में मिल जाता है तब उस सारभाग युक्त जल की कल्पना को उस द्रव्य का फाण्ट कहते हैं। शार्ङ्गधरसंहिताकार ने फाण्टकषाय की निम्नलिखित परिभाषा दी है—'क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यक् जलमुष्णं विनिक्षिपेत्। मृत्पात्रे कुडवोन्मानं मृदित्वा स्रावयेत् पटात्॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्। सितामधुगुडादींश्च क्राथवत् प्रक्षिपेद्भिषक्॥' (शार्ङ्ग० सं० म० खं० अ० ३।१-२) अर्थात् मिट्टी के पात्र में ४ तोला औषध का चूर्ण और १६ तोले उबलता हुआ जल मिलाकर ढाँककर थोड़ी देर रखा रहने दें तथा जब जल कुछ गुनगुना हो जाय तब उसे हाथ से मसलकर महीन स्वच्छ वस्त्र से छान लें। इसको फाण्ट और चूर्णद्रव कहते हैं। इसकी मात्रा पीने के लिये

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

४ से ८ तोले तक कही गई है। फाण्ट में मिश्री, शहद या गुड़ मिलाने को लिखा हो तो क्वाथ में लिखे हुये परिमाण के अनुसार ही मिलाना चाहिये। यहाँ पर फाण्ट-कल्पना के हेतु जो द्रव का परिमाण ४ तोला लिखा गया है वह मृदुवीर्य द्रव्य के लिये ही जानना चाहिये। इसी प्रकार मध्यवीर्य द्रव्य का २ तोला तथा तीक्ष्णवीर्य औषधद्रव्य का १ तोला चूर्ण लेना उचित है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि १ पल औषध का महीन चूर्ण करके रख ले और मिट्टी के पात्र में पावभर पानी भरकर आँच पर चढ़ा दे। जब पानी उबलने लगे तब उसमें चूर्ण डाल दे। कुछ समय के बाद उतारकर कपड़े से छान ले। इसको फाण्ट कहते हैं। इस फाण्टकषाय की मात्रा आठ तोले होती है।

फाण्ट को यूनानी वैद्यक में मनकूअ, नकूअ, नकीअ कहते हैं ये शब्द अरबी भाषा के हैं। फ़ारसी भाषा के पर्यायों में फाण्ट को खिसांदा, खेसान्दह कहते हैं। पाश्चात्य वैद्यक (एलोपैथी) में तथा अंग्रेजी भाषा में फाण्ट के लिये इन्फ्यूजम या इन्फ्यूजन (Infusum or Infusion) शब्द व्यवहृत होते हैं।

पाश्चात्य वैद्यक ग्रन्थों में फाण्टकषाय या (Infusion) के लिये निम्नलिखित परिभाषा प्राप्त होती है—'Infusa Recens Fresh infusions are watery solutions of vegetable priniciples prepared by soaking in cold or boiling water, coarsely powdered or bruised crude drugs, for a certain time in a covered vessel and then straining the liquid. Quassia and Caulumba only are infused in cold water. The amount of water in all cases is 1000 mils. All infusion become inky with persalts of Iron, except those of quassia and caulumba. They should always be prepared fresh and the prescriber should always 'specify recens' when fresh infusion is reqired. They are nine in numbers. 1. Infusum Aurantii Recens. 2. Infusum Buchu

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Recens. 3. Infusum Calumbae Recens. 4. Infusum Caryophylli Recens. 5. Infusum Gentian. Co. Recens. 6. Infusum Digitalis Recens. 7. Infusum Quassiae Recens. 8. Infusum Senagae Recens. 9. Infusum Sennae Recens.

The infusum of Digitalis is more important. It contain 0·05 unit of activity in 1 mil. and one twentieth of the strength of the tincture. The dose is 6 to 20 mils. or 90 to 300 mils. For a single dose it is given in 30 to 120 mils or 1 to 4 ozs. For dispensing purposes, fresh infusion should be used within twelve hours of its preparation.

Infusa Concentrata—Concentrated infusions are solution of drugs in alcohol prepared either by percolation or maceration, to be diluted with seven times their volume of distilled water, when they become approximately equivalent in strength, but not in flavour, to fresh infusions, but containing only a small proportion of alcohol. They are eight in number. Infusion of sennae both fresh and concentrated are now prepared with fruits and not with leaves.

1. Infusum Aurantii conc. 2. Infusum Buchu conc. 3. Infusum Caulumbae conc. 4. Infusum Caryophylli conc. 5. Infusum Gention compositum conc. 6. Infusum Quassiae conc. 7. Infusum Senagae conc. 8. Infusum Sennae conc. (Mat. Med. by B. N. Ghosh 17th Ed. P.P. 20-21.)

उपर्युक्त गद्यांश का भाव निम्नलिखित है—

इनफ्यूजस, इनफ्यूजन वा इनफ्यूजा—यह औद्भिद द्रव्यों के वीर्यवान् भागों का जलीय विलयन होता है। फाण्ट तीन प्रकार के होते हैं—

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

१. साधारण फाण्ट (Infusion plain) संकेन्द्रित फाण्टों (Concentrated infusions) में जल मिलाकर बनाये जाते हैं । २. संकेन्द्रित फाण्ट (Concentrated infusions) तथा ३. अभिनव फाण्ट (Infusum recens or fresh infusion) ।

इनफ्यूजम रीसेन्स या अभिनव फाण्ट—ये संख्या में नौ हैं—१. इनफ्यूजनम आरेण्टाई रीसेन्स, (२) इनफ्यूजम बूचू रीसेन्स (३) इन्फ्यूजम कॉलम्बा रीसेन्स, (४) इन्फ्यूजम कैरियोफाइली रीसेन्स (५) इन्फ्यूजम जेंशियन कोरीसेन्स (६) इन्फ्यूजम डिजीटेलिस रीसेन्स (७) इन्फ्यूजम क्वासिया रीसेन्स (८) इन्फ्यूजम सीनेगा रीसेन्स (९) इन्फ्यूजम सेन्ना रीसेन्स । इनमें से दो प्रकार के अभिनव फाण्टों की निर्माण-विधि ब्रिटिश फार्माकोपिया में लिखी गई है ।

(१) इन्फ्यूजम कलम्बी रीसेन्स—कलम्बा के छोटे छोटे टुकड़े ५ ग्राम; शीतल जल १०० मि० लि० । ३० मिनट तक फाण्ट करें, तदुपरान्त छान लें। मात्रा ½ से १ औंस या १५ से ३० मि० लि० ।

(२) इन्फ्यूजम कासी रीसेन्स—छिला हुआ क्वासिया १० ग्राम, शीतल जल १००० मि० लि० । १५ मिनट तक फाण्ट करें । मात्रा ½ से १ औंस या १५ से ३० मि० लि० । यह विशेष ज्ञातव्य है कि सभी इन्फ्यूजन्स, कन्सेन्ट्रेटेड इन्फ्यूजन्स (संकेन्द्रित फाण्टों) को छोड़कर निर्माण के पश्चात् वे १२ घण्टे के अन्दर प्रयुक्त कर लिये जाने चाहियें क्योंकि इसके पश्चात् वे विकृत हो जाते हैं । रोगी को व्यवस्था देते समय यदि अभिनव फाण्टों का प्रयोग करना हो तो चिकित्सक को उनका स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहिये ।

अभिनव फाण्टों की निर्माण-विधि—अभिनव फाण्ट औद्भिद औषधद्रव्यों को शीतल या उबलते हुए जल में भिगोकर कल्पित किया जाता है । इसके लिये द्रव्यों को जवकुट करके अथवा यदि वे ताजे या गीले हों तो उनको कूटकर भिगोना चाहिये तथा पात्र को ढक देना चाहिये । निश्चित कालोपरान्त द्रव को छान लेना चाहिये । यह छना हुआ औषधीय द्रव ही इन्फ्यूजम रीसेन्स या अभिनव फाण्ट है ।

इन्फ्यूजा कन्सेण्ट्रेटा या संकेन्द्रित फाण्ट—यह ओषधियों का सुरासारघटित (अल्कोहीलीय) विलयन होता है जो स्रवण (Perco-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

lation) या शीतफाण्ट (Maceration) की प्रक्रिया से बनाया जाता है। (इसका वर्णन हम शीतकषाय कल्पना के प्रसंग में कर चुके हैं) इसकी उपयोगिता यह है कि इसका संरक्षण अधिक काल तक किया जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर इसमें सातगुना परिस्रुत जल मिलाकर अभिनव फाण्टवत् प्रयोग हो सकता है। केवल अल्पमात्रा में इसमें अल्कोहल (सुरासार) होता है। ब्रिटिश फार्माकोपिया में इनकी संख्या आठ बताई गई है— (१) इन्फ्यूजम कण्सेन्ट्रेटेड आरेंशियाई (२) इन्फ्यूजम बूचू कन्सेण्ट्रेटा (३) इन्फ्यूजम कालम्बी कन्सेन्ट्रेटेड (४) इन्फ्यूजम कैरियोफाइलाई कन्सें० (५) इन्फ्यूजम जेंशियन कम्पोसिटम कन्सें० (६) इन्फ्यूजम क्वासिया कन्सें० (७) इन्फ्यूजम सिनेगा कन्सें० (८) इन्फ्यूजम सेन्ना कन्सेन्ट्रेटेड।

इनफ्यूजन या फाण्टकषाय बनाने के हेतु कुछ विशिष्ट नियमोपनियम

१—फाण्टकषाय या इन्फ्यूजन बनाने के लिये औषधि का सूक्ष्म चूर्ण नहीं करना चाहिये वरन् औषधद्रव्य का यवकुट चूर्ण ही अच्छा रहता है।

२—फाण्टकषायकल्पना के लिये परिस्रुत जल (Redistilled water) का प्रयोग करना चाहिये।

३—फाण्ट-निर्माण के समय जिस द्रव्य का फाण्ट बनाना हो उसका जल में निलम्बन (Suspension) होना आवश्यक है। इसके लिये स्वच्छ तथा महीन वस्त्रखण्ड या मलमल के टुकड़े में औषध की पोट्टली बनाकर पात्र में ढक्कन के नीचे से पात्र में जल के अन्दर डूबता हुआ लटकाकर टाँग देना चाहिये अथवा क्रियासौकर्य्य के हेतु एक विशेष पात्र का, जिसको स्क्वायर (Squire's) या मॉज़ (Maw's) का इन्फ्यूजन पात्र (Infusion pot) भी कहते हैं, का प्रयोग करना चाहिये।

४—फाण्ट निर्माण करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि यथासम्भव जल का तापक्रम सम रहे (Must be of a uniform temperature)।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

५—यदि स्रोत (सोता) या झरने अथवा कुएँ के कठिन जल (Hard water) में फाण्ट बनाया जाय तो तैयार फाण्ट का रंग अच्छा नहीं आता क्योंकि कठिन जल में औषधद्रव्य के निस्सार्य (सत्त्व) तत्त्व (Extractive matters) अच्छी तरह नहीं घुलते।

६—प्रायः जब फाण्ट का प्रयोग हो तो तत्काल उसका निर्माण करके ताजे रूप में ही उसका प्रयोग करना चाहिये। ब्रिटिश फार्माकोपिया में इस प्रकार के फाण्ट का पृथक् लक्षण दिया है जो जिसे अभिनव फाण्ट (Fresh infusions) या इन्फ्यूजा रीसेन्स (Infusa recens) कहा जाता है।

संरक्षण तथा प्रयोग की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न फाण्ट संकेन्द्रित (Concentrated) करके तथा सुरासार (Alcohol) आदि परिरक्षण द्रव्य मिलाकर रख लिये जाते है। आवश्यकता पड़ने पर इसमें जल मिलाकर हलका (Dilute) करने से अभिनव फाण्ट (Infusum recens) के समान ही फाण्ट तैयार हो जाता है जो गुण तथा क्रिया में हीनप्रभावशाली नहीं होता।

आजकल भारत के घर-घर में इस प्रकार फाण्ट का प्रयोग अधिकाधिक मात्रा में किया जा रहा है। चाय नामक शक्तिदायक, आतिथ्यकारक तथा स्फूर्तिदायक पेय के रूप में तो इस पेय की सभी जानते हैं किन्तु इस पेय का निर्माण फाण्टकषायकल्पना के अन्तर्गत ही होता है। इसका अनुमान सम्भवतः वैद्यों व चिकित्सकों को छोड़कर साधारण जनता को नहीं है।

आयुर्वेदोक्त कुछ प्रसिद्ध फाण्ट, उनके गुण तथा प्रयोग

(१) बृहन्मधूकादिफाण्ट—मधूकपुष्पं मधुकं चन्दनं सपरूषकम्। मृणालं कमलं लोध्रं गम्भारीं नागकेशरम्॥ त्रिफलासारिवाद्राक्षालाजान् कोष्णे जले क्षिपेत्। सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वाऽसौ हिमोऽथवा॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छाऽरतिभ्रमान। रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा॥' अर्थात् महुआ के फूल, मुलेठी, लाल चन्दन, फालसा, कमल की नाल, कमल के फूल, पठानी लोध, गम्भारी, नागकेशर, त्रिफला, सारिवा (अनन्तमूल), मुनक्का और धान का लावा (खील) इन सबको

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सम भाग लेकर कूट लें और एक पल मात्रा में लेकर एक कुडव गरम जल में डालकर कुछ देर बाद मलकर छान लेवें। इसमें मिश्री और मधु मिलाकर पीने से अथवा इन्हीं द्रव्यों का हिम (शीत कषाय) बनाकर मिश्री और मधु का प्रक्षेप देकर पीने से वातपित्तज्वर, दाह, तृष्णा, मूर्च्छा, अरति, भ्रम, रक्तपित्त और मद का विनाश होता है। अतः इसके प्रयोग के विषय में तनिक भी ऊहापोह नहीं करनी चाहिये।

(२) आम्रादिफाण्ट—'आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः। उशीरेण कृतः फाण्टः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः॥ पिपासाछर्द्यतीसारान् मूर्च्छां जयति दुस्तराम्॥' आम और जामुन के पत्ते, बड़ शुङ्ग (नये कोमल पत्तों की कली) और वट (बरगद) की जटा तथा खस इनका फाण्ट मधु मिलाकर पीने से ज्वर, पिपासा, वमन, अतिसार और कृच्छ्रसाध्य मूर्च्छा रोग शान्त होते हैं।

(३) लघुमधूकादिफाण्ट—'मधूकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः। द्राक्षया च कृतः फाण्टः शीतशर्करया युतः॥ तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाह-मूर्च्छाभ्रमान् जयेत्॥' अर्थात् महुआ के फूल, गम्भारी, लाल चन्दन, खस, धनियाँ और मुनक्का का फाण्ट ठण्डा कर अथवा शीतकषाय शक्कर (चीनी) मिलाकर पीने से प्यास और पित्तविकार शान्त होते हैं तथा दाह, मूर्च्छा और भ्रम नष्ट होता है।

प्रयोगसंख्या १५

त्रिफला-फाण्ट-कल्पना

द्रव्यनाम	मान	सहयोगी द्रव्य	मान	उपकरण
त्रिफला	१ तोला	जल	४ तोला	लौहखरल, कटोरी, अंगीठी द्रवमापक यन्त्र, सफेद स्वच्छ महीन कपड़ा।

विधि—सर्वप्रथम त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) को समान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मात्रा में लेकर लौह खरल में डालकर शुष्क कल्क (यवकुट चूर्ण) बनावें। फिर अँगीठी पर एक कटोरी में ४ तोले पानी भरकर रख दें। जब पानी में उबाल आ जाय तो उसमें उपर्युक्त पिष्ट कल्क छोड़ दें और मिट्टी के शराव से उस कटोरी को ढककर अँगीठी पर से उतार लें। जब कटोरी का पानी ठण्डा हो जाय तो सीझे हुए त्रिफला-कल्क को अच्छी तरह मसलकर उस त्रिफलासारयुक्त जल को स्वच्छ महीन कपड़े के चौकोर टुकड़े की सहायता से छान लें तथा प्राप्त फाण्ट को द्रवमापक पात्र (गिलास) में नाप लें। इस प्रकार उपर्युक्त क्रिया द्वारा प्राप्त द्रव फाण्टकषाय नाम से जाना जाता है।

परिमाण—द्रवमापक गिलास से मापने पर तीन तोले की मात्रा में गहरे हरे रंग का त्रिफला-फाण्ट तैयार हुआ।

Vaidyaraj Zindi Bhagi
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi-26
Call No..
Book No 000136
Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रकाशित हो गया ! रसचिकित्सा का सर्वोत्तम ग्रन्थ !! प्रकाशित हो गया !!!

रसचिकित्सा

लेखक:—

राजवैद्य प्राणाचार्य डा० कविराज श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय

एम. ए.डी. एस. सी.

भू० प्रिंसिपल, आयुर्वेदिक कालेज, कलकत्ता

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में प्राचीन रसग्रन्थों से अनुभूत पारद के १८ संस्कारों का तथा पारदभस्म, हरितालभस्म आदि के निर्माणविधि का वर्णन बहुत सुन्दर रीति से किया गया है तथा स्वर्णघटित मकरध्वज बनाने की ऐसी विधि बतलाई गई है कि जो आज तक किसी भी अन्य पुस्तक में प्रकाशित नहीं हुई थी और न सर्वसाधारण वैद्य उसे जान पाये थे। इसके अतिरिक्त अभ्रकादि खनिज धातुओं का आश्चर्य जनक शोधन मारण तथा उनके सेवन विधियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके द्वितीय तथा तृतीय खण्ड में ज्वरादि रोगों की चिकित्सा दी गई है और टायफाइड, न्यूमोनिया, इन्फ्लुयेञ्जा, कालाजार, प्लेग, गैष्ट्रिक आलसार, गलस्टोन, हैजा, सुजाक, उपदंश (आतशक) आदि वर्त्तमान काल में प्रचलित दुःसाध्य रोगों की भी सुन्दर अनुभूत चिकित्साविधि लिखी गई है। इस पुस्तक द्वारा चिकित्सक जटिल से जटिल आधुनिक रोगों की भी चिकित्सा करने में सफल हो सकता है। जिन प्रयोगों और अनुभवों को वैद्य लोग छिपाते थे प्राच्य प्रतीच्य चिकित्साशास्त्र के अद्वितीय मनीषी चट्टोपाध्यायजी ने स्वानुभूत उन योगों तथा अनुभवों को भी चिकित्सकों की सुविधा के लिये इसमें उल्लिखित कर दिया है। इस पुस्तक में वस्तुतः रसचिकित्सा का महत्व विशेष रूप से प्रदर्शित किया गया है इस पुस्तक के अध्ययन से रसचिकित्सा द्वारा असाध्य रोगों को भी साध्य करके साधारण वैद्य भी सफल रसचिकित्सक बनने का गौरव प्राप्त कर सकता है। अतः यह ग्रन्थ सभी रसचिकित्साभिलाषियों के लिये अत्यधिक उपयोगी होने से अवश्य संग्राह्य है। पुस्तक सुन्दर टाईप ग्लेज कागज में छपी है। मूल्य ६)

प्राप्तिस्थान—चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी–१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हाथों हाथ बिकने वाला ! आधुनिक चिकित्सोपयोगी !! छप गया !!!

All India Ayurvedic Congress, 66, Punjabi Bagh, New Delhi-1100..

पेटेण्ट प्रस्क्राइबर पेटेण्ट मेडिसिन्स

डा० रमानाथ द्विवेदी

एम. ए., ए. एम. एस., डी. एस-सी. ए.

चिकित्सक, सरसुन्दरलाल अस्पताल, हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी ।

संसार की सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध अंगरेजी दवा निर्माण करने वाली कम्पनियों ने जो अचूक योग अपनी प्रयोगशालाओं में लाखों रुपये खर्च करके तैयार कराये हैं—जिनको विश्वभर के चिकित्सक प्रयोग में लाकर अपार धन कमाते और सुखी रहते हैं उन सबका संग्रह ४७० पृष्ठों के इस विशाल ग्रन्थ में बड़ी सरल भाषा में किया गया है और ३६० से ऊपर चालू रोगों पर हजारों नये डाक्टरी योग बतलाये गये हैं जो बूट्स, वेयर, अपजोन्स, लैडर्ले, लिली, सिलागहिन्द, अलेम्बिक, यूनीकेम, बरोजवैकम, इर्बा, रौची, स्कीव, शैरिंग एम एण्ड बी, सीबा, आई सी आई, नौल्स, ग्लैक्सो, पार्कडैविस, हूचैस्ट, सैण्डोज इण्डोन, सिपला, मर्क, विण्ट्रोप, इवान्स, बृटिश ड्रग हाउस, गीगी, एलेन एण्ड हैन्बरी, नवरत्न, आर्पी, ड्रैगोन, निओफार्मा, हिमालयन, हक्सले, हिन्द, शार्प एण्ड डोन्स, कार्निक, वाइथ, आर्गेनन, बंगाल इम्यूनिटी, बंगाल कैमिकल, रैप्टाकोज, टी. सी-एफ, लेपेटिट, क्रुक्स, वाण्डर आदि अनेकों कम्पनियाँ अपने अहर्निश प्रयत्नों से तैयार करती रहती हैं ।

रोग का नाम, उस पर विविध कम्पनियों के कौन-कौन योग चलते हैं, उनका नाम, प्रयोग विधि और मात्रा स्पष्ट शब्दों में लिख दी गई है। जिसके द्वारा बिना किसी परिश्रम के आप माडर्न एलोपैथी की नूतनतम चिकित्सा सरलता से कर सकते हैं । अन्त में विष और उनके लक्षण तथा चिकित्सा भी दे दी गई है जिसने ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ा दी है ।

इसने इस विषय की शेष सब पुस्तकों को मीलों पीछे छोड़ दिया है। विशेषता यह है कि यह राष्ट्रभाषा हिन्दी में होने से वैद्य, डाक्टर, हकीम, होम्योपैथ, सभी के उपयोग में आ सकती है। छात्र भी अपरिमित लाभ उठा सकते हैं । आज ही खरीदिये। नवीन टाईप, ग्लेज कागज। गेटअप आदि सभी आधुनिक एवं सुन्दर । मूल्य अत्यल्प ६)

प्राप्तिस्थान—चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी-१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

...dia Ayurvedic Congress
"Dhanwantari Bhavan,"
R... 66. Punjabi Bagh; New Delhi-1100..

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

संक्षिप्त-सूचीपत्र

१ अभिनव विकृतिविज्ञान (सचित्र) श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी २०

२ अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान (सचित्र) श्री प्रियव्रत शर्मा

३ आयुर्वेदप्रदीप—(आयुर्वेदिक-एलोपेथिक गाइड) डा० गंगासहाय

४ एलोपैथिक मिक्श्चर्स—डा० राजकुमार द्विवेदी

५ द्रव्यगुणविज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा। १-२ भाग

६ परिभाषा-प्रबन्ध—श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल

७ भारतीय रसपद्धति—श्री अत्रिदेव गुप्त

८ माधवनिदान—मधुकोष संस्कृत तथा 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या

९ भावप्रकाश निघण्टु—विद्योतिनी हिन्दी टीका। डा. गंगासहाय पा

१० भावप्रकाश—विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित। सम्पूर्ण

११ यकृत् के रोग और उनकी चिकित्सा—वैद्य श्री सभाकान्त २)

१२ योगचिकित्सा—श्री अत्रिदेव गुप्त ३॥)

१३ रसचिकित्सा—कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय ६)

१४ रोगिपरीक्षाविधि (सचित्र)—श्री प्रियव्रत शर्मा ६)

१५ वनौषधि चन्द्रोदय (विशाल निघण्टु ग्रन्थ) १-१० भाग ४०)

१६ विषविज्ञान और अगदतन्त्र—डा० युगलकिशोर गुप्त १॥)

१७ वैद्यकीय सुभाषितावली—डा० प्राणजीवन मा० मेहता २)

१८ सुश्रुतसंहिता-शरीरस्थान—प्रभा-दर्पण हिन्दी टीका सहित ३)

१९ सुश्रुतसंहिता-शरीरस्थान—डा० घाणेकर कृत हिन्दी टीका सहित ८)

२० सूचीवेधविज्ञान—डा० राजकुमार द्विवेदी १॥)

२१ स्वास्थ्यविज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य—(सचित्र-नवीन संस्करण) डा० भास्कर गोविन्द घाणेकर ७॥)

२२ स्टेथिस्कोप तथा नाड़ीपरीक्षा—डा० जाह्नवी प्रसाद जोशी ॥)

२३ स्त्रीरोग विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी ३)

२४ हैजा चिकित्सा—डा० जाह्नवी प्रसाद जोशी ॥)

२५ शिलाजीत विज्ञान—डा० जाह्नवी प्रसाद जोशी ॥)

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा विद्या भवन, चौक, वाराणसी-१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection